साहित्योदय-ग्रन्थमाला पुष्प १

तरङ्गिणी

"प्रशान्तारति रागमभिषेकः कृत कृत्यतां ।
नीरजस्के सदानन्दे पदे चाहं निवेशितः ॥"

लेखक
पं० हरिप्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक—
साहित्योदय, प्रयाग

प्रथम संस्करण
१५००

मूल्य
सजिल्द १)
बिना जिल्द १)

दीपावली, संवत् १९७६ वि०

प्रकाशक,
साहित्योदय, प्रयाग ।

कमर्थम् दास्येऽ ,
भवतु भवदर्थम् मे मनः

त्वदीय वस्तु गोविन्द,
तुभ्यमेव समर्प्यते ।

मुद्रक,
बा० विश्वम्भरनाथ भार्गव
स्टैन्डर्ड प्रेस, प्रयाग ।

हे नाथ,

जब यह सत्य और विश्वसनीय माना जाता है कि आपके प्रेम-मतवाले करुण-कुटीर में ही बैठे हुये शान्ति-श्री की आराधना कर सकते हैं, भव-भयाकुल-भग-वत्प्रपन्न नैराश्य-नीरधि में डूबते हुये आपकी कृपा-नौका का अवलम्बन पा सकते हैं और तिरस्कृत अन्त्यज तथा पतित जन आपके विरह-जल से अपना कलुष-कलङ्क धोकर परम पवित्र हो सकते हैं, तो इसमें सन्देह ही क्या, कि इस महा पतित, प्रेमोन्मत्त, प्रपन्न एवं विरही हरी की प्रणय-उत्कण्ठा आपके सरस सस्नेह राजीव नेत्रों में स्थान न पा सके ? बस, इसी आशा से आपके वांछनीय विरह से आर्द्र इस कठोर और नीरस हृदय से सरल-स्रोत निकलने लगे, जो आज 'तरङ्गिणी' के रूप में दिखाई दे रहे हैं।

इस दीन हीन हृदय से यह निःसरित सरित आपके पद-पद्म-पयोधि की ओर बह रही है। सुना है, वहां जाने से इसका पुनरावर्तन न होगा। जो हो, मेरी तो केवल यही अभ्यर्थना है कि—

"इस निदाघ-दग्ध-निःश्वास-निहत-नयन-नीर
को
अपने पुनीत-स्पर्श से शुभ्र
शिशोदक बना दीजिये!"

प्रस्तावना।

साहित्योदय माला का यह पहला फूल है। एक साहित्य सेवी हृदय की सरल-तरंग-मयी-धवल-धारा है।

हमारे साहित्य का परिवर्तन स्वर्गं हरिश्चन्द्र के समय से आरम्भ हुआ। तभी से गद्य का साँचा ढला, पद्य ने चोला बदला, नाटक जगमगाने लगे, समालोचना हरी भरी हो उठी, उपन्यासों ने धूम मचा दी, समाचार पत्रों के झंडे फहराने लगे। सत्रह बरस ही काम करके हरिश्चन्द्र ने हिन्दी साहित्य में जो जान फूंक दी, उसको अब यमराज भी नहीं मेट सकते।

हरिश्चन्द्र के बाद के पचीस बरसों पर खड़ी बोली का ख़ास तौर से सिक्का जमा हुआ है। इन्हीं दिनों के फेर में कुछ लोग अब तक फूले नहीं समाते। वे ऐसे ऐसे चक्रव्यूहों के आचार्य हो गए हैं जिनमें बड़े बड़े महारथियों की माथापच्ची हो जाती है, ऐसी ऐसी निराली नायिकाओं को गढ़ गढ़ कर अपने उपन्यासों में मढ़ देते हैं कि चट चिन्तामणि के चाचा या मतिराम के मामा बन जाते हैं, सरस्वती की सफरमैना के ऐसे सिर पीट सिपाही हैं कि पद्य को पूरी गद्य बना कर आगे के कवियों के लिये रास्ता ही साफ़ किये देते हैं। साथ ही साहित्य के सच्चे प्रेमी लोग भी कलिकाल की गति को देखकर निराशा और निरानन्द की नदियों में प्रत्येक सभा समाज मुशायरे सम्मेलन के अवसर पर नैमित्तिक नियम से दो चार डुबकियां लगा ही लेते हैं।

सच तो यह है कि इस समय में भी हिन्दी का उपकार कम नहीं हुआ। माना कि समाचार-पत्रों ने शिक्षित समाज

पर वह असर नहीं पैदा किया जो करना चाहिये था, उन आवश्यक अंशों को नहीं अपनाया जिनमें से एक दो के लिये आज कल वे कभी कभी कोई विशेष अंक निकाल दिया करते हैं, मान लिया कि उपन्यासों ने समाज, समय, स्वदेश और स्वभाव का वह चित्र नहीं खींचा जो उनका असली अंग है, गल्पों के गुच्छे हमारे बगीचों में नहीं खिले, निबन्धों की भाषा और भावों में वह अनूठा और अनमोल रस नहीं आया, जो हर एक साहित्य-सेवक के हृदय में होना चाहिये, नाटक टिमटिमा गये, प्रहसन परेशान हो गये, समालोचना पीली पड़ गई, कविता के फूल से बदन की कांटों और कंकड़ों में दुर्गति की गई, रसमयी सरस्वती खड़ी बोली के मरुस्थल में लोप हो गई—यह सब माना, तब भी यह पचीस बरस उत्साह से भरे बीते (निरुत्साह से नहीं) और उसी झपेटे और झोंक में लेखक लड़खड़ा गये, लिक्खाड़ लोग पछाड़ खा गये। ख़ैर, खेत में पांस तो पड़ी, सींचा तो गया। किताबों का धड़ाधड़ छपना शुरू हुआ, ऐय्यारी और जासूसी का दिवाला निकल गया, खड़ी बोली डट कर सिंहासन पर आ बैठी, तुकों की जोड़ी का भी कभी कभी दम फूलने लगा और कविता की बरात में रथों और बहलों, बग्घियों और मोटरों की चित्र विचित्र मांग जारी हो गई।

आज कल के धुरें से धुरें और धुरंधर से धुरंधर समालोचक को कुछ समय में साहित्य के सच्चे स्वाद का सौभाग्य होगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं। भाग और फेन बहुत कुछ किनारे लग गया है। सूखी और मुरझार लकड़ियां बहुत कुछ तटों पर पटक दी गई हैं। जिन उमंगों और जिन तरंगों की कलकल नये हृदयों में आज कल हलचल मचा रही है, उनसे मुझे पूरी आशा है कि दस बरस ही के भीतर हमारे साहित्य

की ऐसी उन्नति होगी जैसी सदियों से नहीं हुई। बिहारी मतिराम देव आदि को जैसे प्राचीन साहित्य की हवा लगी थी, वैसे ही आजकल के साहित्य-सेवियों को नवीन समय की लगेगी, और संभव है कि यदि संसार के परिवर्तन में भारतवर्ष का भी कुछ भाग हो, यदि यहां से भी फिर किसी तत्व की धारा बहे तो हमारी हिन्दी की अगली सदी भी अवश्य कुछ और ही गुल खिलावेगी।

'साहित्योदय' का उद्देश्य इसी आशा में अपने आप को अर्पण करना है। इसके सुमन साहित्य रूपी सर्व को सौरभ और सौन्दर्य दोनों द्वारा तर्पण करने का प्रयत्न करेंगे। और यदि उनकी पंखुरियों पर संसार के जागृति काल के जल की कुछ भी छींटें पड़ गईं तो आशा है कि आज कल की हवा भी उनके ऊपर कुछ कृपा करेगी।

यह गद्य का युग है—यह कहिये कि गद्य की नदी के बाढ़ के दिन हैं। तिस पर भी जिस समय चराचर को चमत्कार से भरी किसी मुरली की धुनि सुनाई पड़ेगी, उसी क्षण यह सारा कोलाहल शान्त हो जायगा, परिवर्तन सर्ग का स्वयं परिवर्तन हो जायगा।

कविता गद्य में भी हो सकती है, यह पूर्व में पूर्वकाल से माना गया है और पश्चिम में अब माना जा रहा है। परन्तु गद्य अलग है और पद्य-मय-गद्य अलग। ठीक जैसे पद्य अलग है और गद्य-मय-पद्य अलग। गल्प उपन्यास इतिहास—यह गद्य साहित्य के अंग अपने अपने नियमों से अधिक बंधे रहते हैं, और इतनी सरल और सफल रीति से नहीं चल फिर सकते जितना निबंध। गद्य को उसकी गद्दी पर बिठाना निबंधों ही का काम है। छोटे छोटे सरल सबल सुन्दर स्वाभाविक लेखों से लेखक के हृदय का, आत्मा का,

संदेश का, भाषा के भेष का दर्शन कराना निबंधों ही का काम है। वे गद्य के गहने हैं। हृदय की किरनों से छुए हुए अधखिले फूल हैं। आत्मा के रस की विरल तरंगें हैं, लेखनी की सैर हैं।

तरंगिणी---ने गद्य द्वारा पद्य की प्रकृति के परिचय देने का प्रयत्न किया है। इसकी गद्य ने भी स्थान स्थान पर भिन्न भिन्न प्रकार से अपने भावों की पूजा की है, और अपनी सीधी सादी सरल धारा में भांति भांति के बुलबुलों, चकरों और हिलोड़ों की कला दिखलाई है। पुस्तक का मुख्य उद्देश्य भावोंकी ऊंचाई, गहराई, मिठास और नयेपन की ओर है। परमात्मा और प्रकृति, स्वदेश और समाज, सुहृदों और बालकों का हृदय, मानवकर्तव्य और मानसमिलन यह इसके गूढ़ विषय हैं। ढंग गीताञ्जलि का है, परन्तु रंग रवीन्द्र बाबू ही का नहीं है। जो लोग इसको ध्यान पूर्वक पढ़ेंगे उन्हीं को इसके वास्तविक रूप और रंग का पता चलेगा।

यद्यपि इसके छोटे छोटे लेख निबंध नहीं हैं परन्तु वे उस पथ की ओर प्रबल रीति से ध्यान खींचते हैं। अनुभवी लोग स्थान स्थान को देखकर यह भी कह सकते हैं कि इस लेखनी की गद्य किस रूप को पकड़ रही है। तरङ्गिणी के दूसरे उद्देश्यों में गद्य की गरिमा और सुसमा की ओर ध्यान खींचना भी है, और आगे चल कर 'भट्ट' जी के नगर में निबंधों को फिर से नया करना भी है। निबंधों की उन्नति से साहित्य की बहुल उन्नति हो सकती है। आशा है कि यह हिन्दी-गद्य-संसार में और साहित्य-सेवी समाज में अपना उचित स्थान पावेंगे।

अनुभव और आनन्द यही दो साहित्य के असली खंभे हैं। इन्हीं चक्की के पाटों के बीच में आकर कवि कभी रोता और

कभी हँसता है, शारदा के भक्त की अटल और अचूक परीक्षा होती है। इन्हीं से भाषा में बल आता है, भावों में पहुंच आती है, लेखनी से रस टपकता है, स्याही चटकीली हो जाती है। समालोचना का सीधा सादा यही एक नियम है। 'तरंगिणी' के तीर पर यदि किसी को कुछ ताज़ी हवा लगे, दिल ठंडा हो, मुंह खिल उठे, पते की बात मिले, तो लेखक का श्रम बहुत कुछ सफल हुआ समझना चाहिये। यदि यह सलिल हिमालय के आकाश-स्पर्शी दिव्य शिखरों से संसार को पुनीत करता हुआ न टपका हो, तो न सही, कुछ हानि नहीं, परन्तु यदि यह संसार के झकोरों से झुर्राये हुये, पाप ताप के प्रचंड मार्तण्ड से बौराये हुए बटोहियों के हृदयों को कुछ भी हिला डुला सके, तो 'तरंगिणी' अपने आप को कृतकृत्य मानेगी, इसमें क्या संदेह है?

शिवाधार पाण्डेय एम० ए०

मातः श्री,

आपने इस जगत-वाटिका की किस निष्पक्ष-निकुञ्ज में मेरी जीवन-ज्योति सस्नेह की है? ज्ञात नहीं आपने किस कुटीर में मेरा भविष्य अङ्कित कर दिया है?

कुछ समय पूर्व तक मैं उसी निर्जन एवं नीरव-निशीथ में निद्रित था। सहसा कहीं से पूर्व-भव का परिचय-प्रचारक-मूर्च्छना से विकम्पित वेणु-रव उठा, जिसके स्वर-सामञ्जस्य में एक अलौकिक दिव्य-शक्ति के दर्शन हुये! वह शक्ति निःसन्देह हे मातः, आपकी ही प्रति-मूर्ति थी।

उस समय से मेरा काया-कल्प सा हो गया। उसी परमाराध्य देवी का प्रतिरूप चराचर में प्रतिबिम्बित समझ कर मेरे पंच-प्राण प्रपन्नता-पूर्ण-प्रसन्नता में परिणत हो गये। क्या इसी प्रसाद को जीवित-जीवन कहते हैं?

आपका सरस-स्नेह तथा सरल स्वभाव मेरे दर्प-हीन-हृदय के जिस कठोर-कोण में विराजित हुआ, वहाँ से अकथनीय-आह्लाद के सुभग-स्रोत बहने लगे। आपके स्तन्य-दान से पुष्टि और तुष्टि की चरम सीमा का पूर्णानुभव हो गया। कर कमल की छाया से माया-मय आवरण हटाकर आज निशान्त-निर्भयता-निरत-निद्रा में जीवन-जागृति ज्योतिर्मयी कर रहा हूँ।

हे परम-पूज्ये ! जब २ मैं आपका धवल ध्यान इस दूषित एवं दुर्द्धर्ष हृदय में करता हूं, तब मेरी व्यक्तिता न जाने किस प्रदेश को प्रयाण कर जाती है और यह आजन्म-भिन्न आत्मा किस सहज-सम्बन्ध-सूत्र में आबद्ध हो मुक्ति मार्ग में खड़ा रहता है ?

मैं नहीं कह सकता कि मेरा भ्रम कहां तक सत्य है, क्योंकि कभी २ जब आपके चरणारविन्दों को चपल चम्पा और कँटीली केतकी सौहार्द्द रूप से कपटाच्छादित कर लेती है, तब मेरा चित-चञ्चरीक उत्कण्ठित हो चिन्ता-चय तथा विषम-विस्मय की तीक्ष्णता के कारण उनका मधुपान नहीं कर पाता, किन्तु हे भक्त वत्सले ! मैंने सुना है कि दीन-मधुकर का पिपासाकुल हृदय आपको किसी न किसी प्रकार स्नेह-सिक्त करना ही पड़ता है। इसी आशा से कमल-रज-कण का त्याग इस भ्रमर-वंश में महा-पाप एवं गर्हणीय समझा गया है। अरे, क्या २ कह डाला, किन्तु कुछ चिन्ता नहीं, बालकों की ऐसी ही प्रकृति होती है। मेरा स्वभाव तो भूलने का ही है। आप उपदेश दीजिये, क्योंकि आप गुरु हैं।

हां, गुरु-भाव आपके चरणों में न मान कर किस कुपात्र में स्थापित किया जाये ? आपके कृपा-कल्प-तरु में मुझे वैराग्य विवेक, भक्ति तथा शान्ति के मधु-मय फल आकलित हुये और कानन-कूजित-कोकिल के कल कण्ठोपम श्रवण-सुखद एवं प्रमोद-मोदकेव मुख-मधुर सुख-स्वप्न चिर-चन्दन-चर्चित-चन्द्रिका में दृष्टि-गत हुये।

धन्य ! वात्सल्य-विनोद ने विचित्र-विकास आपके स्नेहाञ्चल में ही निश्छल-रूप से पाया। सरलता-सञ्चारिणी-संगति का आनन्द-बिन्दु मेरी मरु-भूमि में पड़ कर उसे सुधा-सिञ्चित-सदंकुर-संकुल करने लगा। बस, मेरी क्षुद्र अहंता

का पूर्ण-पतन हो गया और तब से यह मञ्जुल-मानस-मराल आपके पद-पद्मपञ्जर में साश्रित रूप से निवास कर रहा है।

हे अम्ब, क्या प्रणत-पुष्पाञ्जलि आपके चरणों पर चढ़ाने के विचार से ये हाथ कलुषित हो गये, जो उन्हें पुनीत-पूजा का अधिकार न मिल सका? ठीक है, बालक के विचार चाहे विवेकान्वित भी हों तथापि वे बच्चे के अज्ञान-मय हृदय के ही कहायँगे! फिर अविश्वास और कपट को स्थान ही कहाँ?

ओ हां, इस कोमल-कमल-कलिका-कलित हृदासन पर आपके चरण-युग्म की अर्चा करता हुआ इस असार-जीवन को सतत-सेवा का अधिकारी बनाउंगा।

हे जननि, अपने चिर-चरण-अनुचर अधम बालक की तुच्छ सेवा स्वीकार कीजिये।

"यह तरङ्गिणी तदीय-हंसावली की विहार स्थली हो" बस यही आशीर्वाद दीजिये।

मातः क्षम्यताम्! क्षम्यताम्!!

आपका स्नेह-भाजन

चरण-सेवी

पद्मी, पाश्वपद्मी

सूरी

३—जीवन-साफल्य एवं कर्तव्य परायणता ।

४—बाल-काल ।

५—मित्र-विनोद ।

६—स्वदेश और समाज ।

७—मानस-मिलन ।

शुद्धि-पत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
बिषये	विषये	१	३
दीघ	दीर्घ	६	१५
गये गये	गये	१३	९
उल्लासित	उल्लसित	१५	२०
कौन कौन	कौन	१८	६
जाओ	जाओगे	१९	१०
मेरा	मेरी	३१	२५
ओक	लोक	३६	१७
म	मैं	३८	१
मंथामा	मंथामी	५६	२०
संध	संघ	५९	६
?	।	६७	४
ग्राईस्थ्य	गार्हस्थ्य	६९	२०
पदार्थ	परार्थ	७३	२०
चैतन्यात	चैतन्यता	८१	२३
तमाच्छन्न	समाच्छन्न	८८	१८
सये	हुए	१०४	१९

ईश्वर प्रेम और आध्यात्मिक विचार

या प्रीति रविवेकानां विषयेष्वनुपायिनी ।
त्वामनुस्मरतस्सा मे हृदयान्मापसर्पतु ॥

—विष्णु पुराण

O Lord, look not upon my evil qualities !
Thy name O Lord, is same—sightedness.
By Thy touch. if Thou wilt,
Thou canst make me pure.
One drop of water is in the sacred Jamuna,
Another is foul in the ditch by the road side,
But when they fall in to Ganges,
Both alike become holy.
One piece of iron is the Image in the temple,
Another is the knife in the hand of the butcher.
But when they touch the philosopher's stone,
Both alike turn to gold,
So, Lord, look not upon my evil qualities !
By Thy touch, if Thou wilt canst make me pure.

—*Surdas, translated by*
NEVEDITA

अभिवन्दन।

हे विश्वेश्वर! हे करुणाकर! हे मेरे परमस्वामी!

आज,

मेरी रति और भक्ति-पूर्ण प्रणाम,

स्वीकार करले।

मेरे,

अङ्ग प्रत्यङ्ग तेरे अभिमुख अवनत हो रहे हैं;

तेरी अलौकिक मूर्ति हृदयस्थ हो रही है

और,

इस 'तरङ्गिणी' का प्रवाह,

रवि-तनया यमुना की समान, तेरे

पवित्र चरणों

के स्पर्श करने के अर्थ क्षण प्रतिक्षण बढ़ रहा है

हे अच्युत!

मेरा गर्वोन्नत मस्तक अनन्तकाल पर्यन्त तेरे चरणों

पर अवनत रहे,

और,

यह 'मन-मराल' सदा ही तेरी

भक्ति-तरंगिणी

के तट पर निवास करता रहे!

प्रणय-उत्कण्ठा
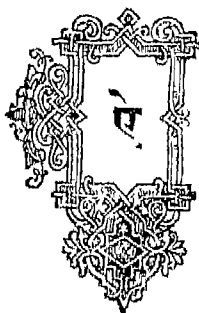
मेरे प्रेम, मेरी एक बात सुन ले, और फिर चला जा। देख, मैं कब से इस निर्जन एवं नीरव वन में, इस अकेले ही वृक्ष के नीचे टक लगाये खड़ा हूं।

दिन के तीनों पन चले गये, आंधी के प्रबल झोकों से यह जीवन-तरु जर्जरित हो गया, किन्तु तेरी आशा से भूमि हरित वर्ण ही रही और यह मेरी अधीर-उत्कण्ठा प्रकृति के सामञ्जस्य में ओत प्रोत होगई।

आ, प्यारे! घड़ी भर इस जीवन-निकुंज-कुटीर में विश्राम लेले। अपने अलौकिक मुख-सौन्दर्य-सरोवर में विकसित-नयनाम्बुज-मरंद का पान, इस विरह-दग्ध-श्याम-भ्रमर-जोड़ी को कर लेने दे।

आ, मेरे समीप बैठ जा। अपना सुमृदु-कर-कमल मुझे स्पर्श कर लेने दे। मैं तेरी धूल-धूसरित-अलकावली का केश-कलाप कर दूं।

तेरे स्पर्श-माधुर्य-जल-दान से यह नीरस-परिश्रम-जीर्ण-जीवन-लता हरित हो जायगी और उसके सुगंधित सुमन तेरे पवित्र चरणों में अर्पित कर दूंगा।

ऐ प्रियतम, आज इतना सुअवसर दे दे, कि मैं घड़ी भर तेरे सम्मुख बैठ कर तुझे प्रेम-गायन सुना दूं और तुझे 'प्रेम-सर्वस्व' कहकर कंठ से लगा लूं।

प्रेम-निकेतन।

प्रश्न—प्रेम-निकेतन क्या है, और कहां है?

उत्तर—प्रेमदेव का नित्य-धाम है और यह अनन्य प्रेमी के हृदय-गत भाव की परम काष्ठा में स्थापित किया गया है।

प्र०—इसके स्थापित करने का क्या लक्ष्य है?

उ०—इसलिये, कि यहां से परमानन्द दायिनी समीर निरंतर प्रवाहित होकर, विषयानुरक्त एवं दीन हीन सांसारिक जनों के परिश्रम-व्यथित गात्र पर संचार किया करे और जिस सु-शांतिपूर्ण निकेतन के दर्शन मात्र से ही आत्म विस्मृति-जनित प्रेमोन्मत्तता अङ्ग प्रत्यङ्ग में झलकने लगे। किम्बहुना, इसका उद्देश्य 'प्रेम का आदेश' प्राप्त कर लेना ही है।

प्र०—इसके नियम क्या हैं?

उ०—आत्मोत्सर्ग करना, अभेद दृष्टि से देखना, तल्लीन हो जाना, सहिष्णुता दिखाना, जितेन्द्रियता प्राप्त करना, निर्भयता, गंभीरता, सत्यता एवं सरलता अभिव्यक्त करना यहां के प्रवासी का मुख्य कर्त्तव्य है। यहां के प्रत्येक नियम आध्यात्मिक हैं, अतः स्वतंत्र तथा नित्य हैं।

प्र०—क्या, यहां किसी विशेष धर्म का उपदेश किया जाता है?

उ०—नहीं, यह निकेतन किसी धर्म पर निर्भर नहीं, क्योंकि इसका उदय मनुष्य की आत्मा में है और आत्मा स्वयं तृप्त और निरालम्ब है। इसी के साधन से मनुष्य को चाहे वह किसी देश में व किसी धर्म में हो, निःश्रेय प्राप्ति हो जायगी।

प्र०--क्या यहां सुधार का भी प्रचार किया जाता है ?

उ०—नहीं! प्रेमानुभव अखंड है, अतः अपरिवर्तन शील है।

प्र०—आप 'प्रेम-शब्द' का क्या अर्थ करते हैं? क्या 'प्रेम' साकार है, जो उसका 'निकेतन' बनाये फिरते हो?

उ०—'प्रेम एव परमात्मा'। अवश्य वह मूर्तिमान है। वह यहां नित्य आता है और निराकार भावना में साकारता धारण करता है।

* * *

परम-प्रकाश।

यह जीवन-भवन अत्यन्त अंधकार से आच्छादित था। तीक्ष्ण विषधारी सर्प-माला ने इसे अपना क्रीड़ालय बना लिया। इसकी गंधि से सारी प्रकृति दुर्वासित हो गई। प्राची दिशा में स्थित मरीचिमाली की तेजोमय-प्रभा मलिन पड़ गई और तिमिर दूना बढ़ गया। चन्द्र और तारागण तो प्रायः पराजित होकर ही लौट गये।

तिमिर के साम्राज्य में अन्याय-जनित-पाप-पुंज का निवास स्थिरता को प्राप्त हो गया। निराशा के श्याम मेघों ने तमाच्छादित-अत्याचार को योग देने में कुछ रख न छोड़ा!

किन्तु, आज की रात्रि में, नित्यानित्य एवं क्रमानुगत न्याय से पूर्व स्थिति का विपर्यय होने वाला है। देखो, पंक से उत्पन्न कमल-कुसुम-इव नीचातिनीचों पर सुदृष्टि-सुधा बरसाता हुआ पतित-पावन प्रेम आ रहा है! उसके मुख-मण्डल से स्फुटित रश्मि-माला अभेद रूप से तिमिर का अनादर न करती हुई, उसे अपना दिव्य रूप प्रदान करती हुई चली आ रही है।

लो, जिस ग्रह से मेरी अरुचि सी हो गई थी, जहां पैर रखते हुये भय-भीत हो जाता था, आज वही जीवन भवन सुरभित-जल-कण-सिक्त-रम्य-पुष्पोद्यान हो गया ! मैं प्रफुल्लित होकर अश्रुतपूर्व-वाणा बजाता हूं और उसके सप्त स्वरों में परिमितान्तर्गत-अनन्तानन्द का सुमधुर गायन सुनाई पड़ता है !

आज, प्रेम-देव की अप्रतिम-प्रभा के आगे अनित्यता की झलक मन्द पड़ गई और यह तमाच्छन्न-जीवन-सदन परम-प्रकाश-मय हो गया।

तेरा ऋणी।

अय प्रियतम, इस गहन वन में इतर स्वार्थ-पर मनुष्यों के साथ, जब मैं अलन्य एवं अविरत परिश्रम करते २ थक जाता हूं, तब दीर्घ-निश्वास परित्याग करते हुये अपनी पर्ण-कुटीर में बैठ जाता हूं। उस समय स्वेद-पूर्ण-व्यथित-गात्र पर पवन का संचार होने लगता है और मैं विविध वर्ण मेघ-माला की ओर देख २ कर मन ही मन कहने लगता हूं कि, 'मैं तेरा ऋणी हूं !'

जब मैं प्रशान्त-महासागर में अपनी जीर्ण-नौका को धीरे २ खेता हूं, मुझे उत्तर-वायु-संचालित-पाल बलात् मनोराज्य की अन्तरङ्ग सीमा में ले आते हैं। वहां घड़ी भर नौका ठहरानी पड़ती है और मैं अनन्त-सागर की तरङ्गावलि में आज्ञाकारी चन्द्रमा का निष्काम नृत्य देखता हूं। किनारे से टकराती हुई मधुरालापिनी लहरें नृत्य के मन्द २ पदन्यास में घुंघरू

का काम देती हूं और मेरा अधीर हृदय बार २ हड़कने पर भी यह गीत गाने लगता है कि, मैं तेरा ऋणी हूं !'

जब मैं हरित-धान्य-सम्पन्न मनोहारी खेतों की ओर देखता हूं, मृग-गामिनी केलि किलोल करती व इठलाती हुई नदी का कल २ रव सुनता हूं, जब मैं अधखिली कुसुमकली के स्निग्ध कपोल का परिचुम्बन करता हूं, जब निःस्वार्थ बालक मेरी गोद में आकर तालियां बजाता हुआ तोतरे वचन बोलता है, जब प्राणाधार प्रियमित्र का करकमल स्पर्श कर अत्यानन्द में निमग्न हो जाता हूं, तब संसार की दृष्टि में धनी बनने की इच्छा रखते हुये भी चिल्ला कर कह उठता हूं कि, 'मैं तेरा ऋणी हूं'

मैं मन ही मन परतन्त्रता के कारण सन्तापित होता हूं, किन्तु इस जन्म-परम्परा-प्राप्त ऋण चुकाने की कोई चेष्टा नहीं करता । धनोपार्जन करते २ सारा जीवन व्यतीत हो गया, पर ऋण न चुकाने से किंचिन्मात्र लज्जित नहीं होता ।

अय मेरे प्रेम ! आज से मेरा यही संकल्प है कि तेरा ऋण अवश्य चुका दूंगा, पर तुझसे उऋण न हूंगा ।

क्यों नहीं, 'मैं तेरा ऋणी हूं, तेरा ऋणी हूं' यही कहते २ उऋण हो जाऊंगा !

अंग प्रत्यङ्ग से तेरी सेवा।

हे पुरुषोत्तम, अब मैं अपनी अमूल्य घड़ियां काल की गम्भीर गुफा में न फेकूंगा। मेरे अंग प्रत्यंग तेरे चरणों की सेवा करेंगे, और यह निराधार जीवन साधार हो जायगा।

हे प्रभो, मेरे नेत्र अप्राकृतिक, मनोरञ्जक तथा निरर्थक दृश्य देखते २ धुंधले हो गये हैं। उनकी श्याम-पुतली वासना के तीक्ष्ण रूप के आघात से श्वेत हो गई है। दीन दुखियों पर आंसू न बहाने से स्वच्छता चली ही गई और मोह का आवरण पड़ने से तीव्र वेदना हो रही है। आज से, प्रकृति-सौन्दर्य पर खिला हुआ तेरी पद-रज का ज्योति-प्रद अंजन लगा कर सहज ही दिव्यदृष्टि प्राप्त कर तेरे मुखारविन्द का अवलोकन किया करूंगा।

हे नाथ, रात दिन काम काज की स्वार्थमयी चर्चा सुनते २ मेरे कर्ण-विवर बन्द हो गये हैं। निस्सार सुधार की चिल्लाहट से बहिरा हो गया हूं। आज, तेरे गुण-गान की झनक से खुल कर स्वच्छ हो जायंगे और उनमें अनहद राग का श्रुति-मधुर आलाप सुनाई देगा।

हे दीनबन्धो, निरन्तर कटु वचन बोलने और पर निन्दा करने से मेरी वाणी कठोर और अश्लील हो गई है। दुष्कर्म के सड़े फल खाते २ मुख का स्वाद ही चला गया। अब तो तेरा ही नाम लूंगा और तेरे ही पुनीत-गीत गाऊंगा, जिससे मेरा कंठ कोकिल को भी लज्जित कर देगा और शब्द आकाश के वक्षस्थल को ताड़ित करेगा।

हे जीवन-निधे, मेरे हाथ कार्यालय की भट्टियों में धौंकी चलाते २ फट गये हैं। सदा दुर्वृत्तियों की दीवारें उठाने से

कठोर हो गये हैं । आज से नवीन फूल चुन चुन कर अपने हाथों से सुन्दर हार बनाऊंगा और उसे तेरे गले में पहिनाऊंगा । तू अपने हाथ से मेरे हाथ छू देगा । क्या तब कवियों की हस्त-उपमायें मेरे हाथों के आगे नीरस न जान पड़ेंगी ?

हे प्रेम प्यारे, मेरा हृदय कामाग्नि से जल कर काला पड़ गया है । विषय-वासनाओं के निवास से दुर्गन्धि आ रही है । किन्तु आज, मैं तेरा नख शिख से ध्यान करूंगा । इससे हृदय-रूपी मरु-भूमि में अन्तरंग-कमल खिल उठेगा । उस कमलासन पर तुझे विराजमान करा के तेरा षोड़सोपचार पूजन प्रेम-पूर्वक करूंगा ।

* * *

अनोखा दूकानदार ।

दूकानदार, तेरी दूकान अनोखी है और उसमें बेंचने वाला भी अनोखा ! मालूम नहीं, तूने कब और कैसे यह दूकान खोली ? कराल काल के गाल में अगणित ब्रह्माण्ड चले गये । अनन्त आकाश में विचित्रातिविचित्र घटनाओं के छिद्र होते होते अवकाश न रहा । कर्म ने अनेक टेढ़े सीधे तन्तु फैला कर लम्बा चौड़ा आवरण निर्मित कर लिया, और माया का काया-कल्प भी हो गया, परन्तु तू माल बेंचते २ ज़रा भी न थका ! तेरी अभूत-पूर्व दूकान में वस्तु का अभाव न होने पाया । अनावृष्टि तथा अतिवृष्टि से तेरे यहां कभी अकाल न पड़ा और सदा से ही प्रत्येक वस्तु का भाव एक सा रहा ।

न तो, तूने कभी किसी से पूंजी उधार ली और न बाहर से कोई माल ही मंगाया। जगत की ठौर २ की हाटों में तेरे ही यहां से माल जाता है, पर अज्ञानी लोग उस पर अपने नाम की झूंठी ही छाप लगा देते हैं। तेरी दूकान दिन रात खुली रहती है। वहां विज्ञापन पत्र नहीं लगाये गये हैं और न सूचना की घंटी ही बजाई जाती है। भीड़ के मारे सांस नहीं मिलती, पर बिक्री बड़ी सावधानी से की जाती है। आश्चर्य है, कि प्रत्येक ग्राहक यही समझता है कि सब से पहिले मैंने ही सौदा की है!

कोई २ धूर्त छल से नकली पैसे देकर सौदा कर ले जाते हैं और मन ही मन कहते हैं कि दूकानदार को ठग लिया! परन्तु जब वे घर पहुंच कर चीज़ निकाल कर देखते हैं, तो वह मिट्टी हो जाती है।

तू बड़ा ही चतुर पैसा परखने वाला है। न तो तेरे हिसाब में कोई भूल ही हुई और न कोई तेरा धन खा कर कहीं भाग ही गया! तेरा व्योपार अतर्क्य एवं अनिर्वचनीय है! सांसारिक मनुष्य कर्मवश बार २ तेरी दूकान पर आते हैं और स्वार्थ की सौदा कर के चले जाते हैं। तू उन पर हंसता है, पर वे मदान्ध तेरे व्यङ्ग पर कुछ भी ध्यान नहीं देते!

अय प्यारे दूकानदार! आज, तेरी अनोखी दूकान पर मैं भी एक अनोखा ग्राहक आया हूं। अपनी प्यारी से प्यारी आत्मा तुझे सौंप कर तेरी 'प्रेम मणि' मोल ले लूंगा। तब तो तेरा दिवाला निकल जायगा और मेरे लिये अपनी दूकान बन्द करनी होगी!

❀ ❀ ❀

क्या तुम वहीं हो ?

प्यारे ! जब तू सामने के रम्योद्यान से हंसता हुआ गेंद उछालता चपल चाल से चला आ रहा था, उस समय मैं एक दीन बन्धी, तेरी अलौकिक छवि पर मुग्ध हो गया। सब बन्धनों को तोड़ कर, लोलुप-भ्रमर की नाईं, मैं तेरे मुख कमल का पराग पान करने को परमोत्सुक हो कर दौड़ा, पर छल बल से निकल कर, तू मुझ से और और दूर भागने लगा और यह केलि-विनोद दिखाता हुआ क्षण भर में इन दरश-तृषार्त्त नेत्रों की ओट में हो गया !

मैं, स्वभाव ही से आलसी और नीच प्रकृतिवाला, तेरा अनुसरण न कर सका। थक कर एक छायादार वृक्ष के नीचे बैठ गया, जिसे लोग 'आशा-वट' कहते थे। तेरी लावण्य-मयी छटा अब भी आँखों में झूलती थी। मैं ने विचार लिया, कि जब तू मिलेगा, तब तेरे छल से भागने का तुझे खूब उराहना देता हुआ लज्जित कर के रहूंगा। आंसू बहने लगे और विरह-पीड़ित अंग शिथिल हो गये। आहें भरता हुआ धरती पर लेट गया।

थोड़े ही देर में किसी ने पीछे से मेरे दोनों अश्रु-प्लावित नेत्र मीच लिये। अहा, क्या ही सुकोमल और शीतल स्पर्श था ! किन्तु मैं ने चौंक कर उन कर कमलों का अनादर करते हुये धृष्टता पूर्वक खिझा कर कहा, 'कौन है रे ?'

अरे, यह तो वही गेंद उछालनेवाला छलिया है !

मन में तो आई, कि दो चार वाक्य बाण छोड़ दूं, पर इन लालची आंखों ने इसके पहिले ही तेरे चितचोर राजीव नेत्रों से मेल कर लिया ! गला भर आया और शरीर में रोम खड़े

हो गये। देह थरथर कांपने लगी और सारा रोष लज्जा में परिणत हो गया।

तू ने अपना हाथ बढ़ाया और हंस कर मेरा कठोर हाथ पकड़ लिया। मैं तेरे प्रेम में अधीर हो गया और नीचे को दृष्टि कर के इतना ही कह आया, कि 'क्या, प्यारे! तुम वही हो?'

* * *

वर-याचना।

हे प्रभो, मुझे ऐसी शक्ति दे, जिससे मेरा दुर्बल हृदय निस्वार्थ और निरपेक्ष हो जावे।

मुझे वह परमार्थ बतला दे, जिसमें निःश्रेय प्राप्ति हो। मैं उस सर्वश्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करना चाहता हूं, जिस के द्वारा तेरा यथार्थ रूप जान सकूं।

मुझे वह सामर्थ्य दे, जिस से संसार के तुच्छ धनाधिकारियों के आगे न झुक कर दीन दुखियों को तेरी सेवा में हाथ पकड़ कर ला सकूं।

मैं उस शुभ बुद्धि को चाहता हूं, जिस के सहारे से तेरे प्रेम के बाधक सहज ही हट जावें।

हे नाथ, मुझे वह ऐश्वर्य दे, कि जिससे मैं अपना पराया भूल कर निरन्तर विश्व-सेवा ही किया करूं।

मेरे शिथिल-शरीर में उस बल का संचार कर दे, कि मैं वासना की अजेय दुर्गमाला क्षण भर में ध्वस्त कर डालूं।

मेरा संकुचित हृदय इतना विशाल कर दे, कि मैं उसमें तेरे विराट् रूप का ध्यान कर सकूं।

मेरी चर्म चक्षुओं में वह आंसू भर दे, कि उनसे तेरे प्रेम के सदा आंसू ही बहा करें और जिन्हें देख कर निर्दयी शत्रु भी वशीभूत हो जावें।

हे भक्तवत्सल ! मुझे ऐसी स्मरणशक्ति प्रदान कर, जिससे मैं तुझे पलभर भी न भूलूं और अपने नित्य के प्रत्येक कार्य को बिना तेरी साक्षी के न करूं।

मुझे वह अहंकार चाहिये कि 'मैं तेरा हूं और तू मेरा है।' अब मेरे प्रियतम, सब से बड़ा वर, जिस को मैं तुझ से याचना करना चाहता हूं, यह है, कि तू मुझे अपना निष्काम तथा विशुद्ध प्रेम दे दे और वह प्रेम तेरे प्रेम ही के लिये हो !

क्या मुझे भूल गये ?

मुझे भूल गये गये ? मैं वही हूं जो अनन्त आकाश में जगत की भिन्न २ वासनाओं का निराधार भवन निर्मित कर खड़ा कर देता हूं। प्रेमियों के आंसुओं की बूंदें, मैं अपने हृदय-घट में भर कर उसकी पवित्र धारा से वासना-गृह को अभिषिक्त करके उसमें अपनी सत्ता स्थापित कर देता हूं। इस भवन में उभय लोक का मान-चित्र खिंचा रहता है और विश्वव्यापी जीवन का यथार्थ अनुभव यहीं पर होता है।

मेरे स्पर्श से कुसुम में कोमलता, नवनीत में स्निग्धता, शशिरश्मि में शीतलता, बाल-हास्य में मधुरता, नेत्र में चपलता, और प्रकृति में मनोहरता अभिव्यक्त हुई है। राग में स्वर-सामञ्जस्य, जगत में विचित्र रहस्य तथा प्रेमियों में सादृश्य मेरा ही निगूढ़ आदर्श है। संयोग-वियोग का अभेदत्व, भिन्न में अभिन्नत्व, मुक्ति में स्वत्व एवं माया का अस्तित्व मेरी सहज बाललीला है।

मैं प्राणियों को समुद्र के ज्वारोपम जन्म मरण के हिंडोले में झुलाता हूं। मेरी बांसुरी में निरञ्जन-गायन बजता है। प्रणयिनी मुक्ति का परिचुम्बन करते समय मुझे तुम्हारा स्मरण आ जाता है और मैं स्नेह-कातर होकर अपना प्रभुत्व भूल जाता हूं। मैं अपनी बाँसुरी का सुरीला राग तुम्हारी नसों में प्रवाहित कर देता हूं। किन्तु तुम मोह निद्रा के वश होकर क्षणिक स्वप्न देखने में ही परम सुख मानकर, उसकी अवहेलना कर देते हो।

मैं तुम्हारे ही बनाये तारों द्वारा तुम्हें अपने आने की सूचना देता हूं, पर तुम उसकी घंटी भी नहीं सुनते! मैं अपना नाम, पता और मिलने का दिन तुम्हारे ही वृक्षों के पत्तों पर लिख जाता हूं, पर तुम उस लेख को काल और कर्म का लिखा समझ कर बांचते ही नहीं! मैं सन्ध्याकालीन रंग विरंगे बादलों में, प्रभात की सु-सीतल-समीर में, प्राकृतिक-रस-माधुर्य में तथा जगत के प्रत्येक कृत्यमें खेलता हुआ तुम्हें हाथ से संकेत करके बुलाता हूं, पर तुम ध्यान ही नहीं देते और चेतना रहने पर भी मुझे भूल जाते हो।

वत्स, मैं तुम्हें कभी न भूलूंगा, कारण कि तुम मेरे बालक हो अतः असावधानी और ढिठाई करते हुए भी क्षम्य हो।

पूर्ण सङ्कल्प ।

विश्वम्भर, आज से मैं निरन्तर तेरा पतित-पावन नाम लूंगा। तेरे कर-कमल-निर्मित-अमूल्य-रत्न अपनी तुच्छ अंगूठी में जटित कर लूंगा। उस अंगूठी का बहुमूल्य स्वर्ण क्षुद्र स्वार्थ भँवरमें पड़े रहने के कारण मलिन हो गया है। मेरी आंगुलीय पहिले बहुत ही निर्मल थी, पर उसमें अज्ञान वश मैंने चमक दमक के अनेक बेल बूटे खुदवाये, जिससे उसमें वेदना का मैल भर गया। किन्तु, आज तेरे नाम रूपी नग जड़ने से उसकी प्रभा दूनी हो जायगी और उस पर नित्यता का प्रकाश पड़ने लगेगा।

हे दीनबन्धो, आज से मैं अपनी वीणा में तेरा गुण-गान करूंगा। अप्राकृतिक एवं द्वैतता के अश्लील गीतों की मीड़ तान से वीणा के तार टूट जाते थे और मेरा मधुर-स्वर काँपने लगता था। इसी कारण नश्वरता में विलीन हो गये। किन्तु अब मेरा कण्ठ उदात्त एवं वाणी विकाश-विलासिनी हो जायगी। तेरे राग के सप्तस्वरों की आरोही-अवरोही चतुर्दश लोक में अभिव्याप्त हो जायगी। वीणा की सु-रव-झनकार से नभो-मण्डल उल्लासित हो सूर्य-चन्द्र व तारागणों को अभिनन्दित करेगा और वे अपनी गति रोक कर मेरा विराट-गायन सुनेंगे।

हे मनमोहन, आज से मैं तेरे पवित्र-चरणों का ध्यान करूंगा। राग द्वेष तथा मोह और ईर्ष्या का दुर्बिम्ब पड़ने से मेरे नयन-मुकुर धुंधले हो गये थे। निरन्तर काम वायु के

भाग कर कहां जाओगे ?

अय मेरे प्यारे प्रेम, भाग कर कहां जाओगे ? मैं तुम्हारा पीछा कभी न छोड़ूंगा और एक न एक दिन तुम्हारा हाथ पकड़ कर ही रहूंगा।

कब का तुम्हारे साथ आँख मिचौनी खेलता हूं। मालूम नहीं, कौन कौन पीछे से मेरी दोनों आंखें मूंद कर, तुम्हें अपने हृदय में छिपा लेता है! मेरा वासना-जाल विच्छिन्न है। उसके फन्दे क्षुद्र अहंकार और बुद्धि ने बनाये हैं। ये ही मुझे चारों ओर से घेरे हुये हैं, किन्तु मैं मूढ़ इसे झरोखेदार फूल-मण्डप समझता हूं। इसके भीतर बैठ कर मुझे तुम्हारी मन-मोहिनी झलक दिखाई देती है, पर ज्यों ही मैं तुम्हें पकड़ने को दौड़ता हूं, त्यों ही मण्डप के फूल इन्द्र के वज्र हो जाते हैं और मेरा सिर टकरा कर फूट जाता है।

आज, मैंने वासना-जाल तुम्हारे आत्यंतिक विरह से छिन्न-भिन्न कर डाला और अकेला ही इस सूनसान मैदान में तुम्हारे दर्शन करने को खड़ा हो गया। काल और कर्म भयभीत हो सामने से हट गये और भेद-दृष्टि का सर्वतोभाव नाश हो गया। देखूं, अब तुम्हें कौन छिपाता है?

हे सर्व व्यापिन्, मैंने अपने चर्म-चक्षुओं में समता का दिव्य अंजन लगा लिया है। व्यापकता के प्रकाश से द्वैतान्धकार नष्ट कर दिया। अब तुम्हारे पकड़ने में कोई अड़चन नहीं। तुम, भाग कर जहां छिपोगे, मुझे वहीं भिन्न २ रूपों में देखोगे और अन्त में हार कर मेरे सामने आना ही पड़ेगा।

हे चितचोर, तुम नौ-सिखिया चोर हो। सर्वस्व चुरा

कर ले गये, पर चुराते न बना ! ज्यों ही मुझे देखा, अपने कण्ठ की प्रेम-माला छोड़ कर भागे । मैंने माला उठा कर मन में कहा, कि क्या चिन्ता, अब तो चोर का पता लग ही जायगा ।

हे प्राणनाथ, तुम्हारे नट-खट खूब देखे । अब, छल बल न करते हुये इन तरसते हुये अधीर नेत्रों को दर्शन देकर शान्ति दो । डरते क्यों, मैं तुम्हारा कुछ भी न करूंगा ।

किन्तु हे मनमोहन ! तुम्हारी ही प्रेम-माला से तुम्हारे दोनों हाथ बांध कर मुझे इतना कह लेने दो कि,

" कहो प्यारे चोर ! अब, भाग कर कहां जाओ ?"

❧ ❧ ❧

कुशल चित्रकार ।

हे सुचतुर चित्रकार ! तेरा चित्राङ्कण बड़ा ही अद्भुत है । तूने अपनी माया का आश्रय लेकर निराधार आकाश की भीत (दीवाल) बना ली । शब्द का मोम लगा कर सचिक्कण कर दिया । तब अहंकार की अपूर्व लेखनी लेकर उस पर चित्र खींचने लगा ।

सप्तवर्णीयइन्द्र-धनुष, तड़ित वर्ण विद्युत, प्रभाकारिणी रविकिरणें, मनोहारिणी चन्द्र-रश्मियाँ, रक्तवर्ण ऊषाकाल तथा पीतवर्ण वसन्त आदि क्षण भर में बना दिये । फिर प्रारब्ध एवं अनारब्ध की अनेक रेखायें खींचीं । सुख दुख की बेलें निकालीं, जिनके बीच २ रागद्वेष के फूल और पत्ते बनाये ।

वासना के ऊंचे २ धवहरे और विषय के मनोरञ्जक उपवन अङ्कित किये। तब जीवन-मरण, शोक-मोह, तथा पिण्ड-ब्रह्माण्ड के अनेक अद्भुत चित्र खींचने लगा। नाना प्रकार की मूर्तियां और विविध दृश्य बना २ कर दर्शकों को चकित कर दिया।

तेरी चित्रकारी के रंग बड़े ही पक्के हैं। काल उन्हें धो डालता है, पर वे फिर ज्यों के त्यों दिखने लगते हैं। बड़े २ विद्वान और बुद्धिमान, कवि और कोविद, योगी और वियोगी तथा गृहस्थ और सन्यासी तेरा विचित्र चित्र देखते देखते मोहित हो गये, फिर मूढ़ कामियों का तो कहना ही क्या?

हे चतुर चित्रकार, तेरे विशुद्ध प्रेम का चश्मा लगा कर, मैं तेरा चित्र देखने आया हूं। एक तेरे ही निर्विकार रंग से लिखे हुये जीवन्मुक्त दृश्य दिखाई दे रहे हैं। सात्त्विक रूप से तेरा चित्र देखते २ बिना ही निवृत्ति के मेरी मोक्ष हो जायगी, क्योंकि इस विराट् चित्राङ्कण में तेरी मधुर मूर्ति की झलक सर्वत्र ही दिखाई पड़ती है।

* * *

काव्य-कौशल।

कवीश्वर! तेरी काव्य अश्रुतपूर्व है तथा उसका रहस्य बड़ा ही विचित्र है। चार वेदों और षट्शास्त्रों ने अपने २ मतानुसार उस पर अनेक भाष्य और टीकायें रचीं, किन्तु उसकी 'इति श्री' नेति नेति पर ही करनी पड़ा!

तू, काल की अनन्त पत्रवाली पुस्तक बनाकर, उस पर मूल-प्रकृति की लेखनी से काव्य-लेखन करने लगा।

तू ने विविध प्रकार के छन्द लिखे, किन्तु उनके आद्य एवं अन्त्यानुप्रास 'अनिर्वचनीयता' पर ही पूर्ण हुये। तेरी विशद काव्य में सुख-दुख, जीवन-मरण, ज्ञान-अज्ञान, तथा बन्धन-मुक्ति के अनेकानेक अलंकार पाये जाते हैं। उसके प्रत्येक पद संगीत-संगत हैं। शब्द-लालित्य तथा रस-प्राचुर्य स्थल स्थल पर भरा है और उसकी शैली भी नवीन एवं भाव-पूर्ण है।

हे महाकवे ! तेरी अतर्क्य काव्य में माया-जनित अगणित दृष्टि-कूटक पाये जाते हैं, जिनका अर्थ लगाते २ सांसारिक पण्डितों का गर्व खर्व हो गया। तूने छन्द-प्रबन्ध में ऐसी स्वच्छन्दतापूर्वक प्रसादगुण का समावेश किया है कि रात दिन पढ़ते २ मन को किसी प्रकार का शैथिल्य प्राप्त नहीं होता है और उत्कण्ठा प्रतिक्षण बढ़ती ही जाती है।

हे कवि-शिरोमणे, धन्य है तेरी तत्काल कवित्व शक्ति को ! तेरी प्रतिभा-पूर्ण कविता वर्तमान का नाश करके भूत और भविष्यत् में आश्चर्य की झलक छोड़ जाती है।

हे अनादि कवे ! जगत् के प्रत्येक जीव ने अपनी २ रुचि से तेरी महाकाव्य का अध्ययन किया, पर मेरा स्वल्प जीवन उसके पन्ने इधर उधर उलटते ही बीत गया। आज परीक्षा का दिन आ गया। किन्तु मेरे चित्त में बिलकुल ही घबड़ाहट नहीं, क्योंकि मैंने महाकाव्य का उपक्रम और उपसंहार देख लिया। वहाँ अनन्य प्रेम के छन्द लिखे हैं। आज, मैं उन्हें हृदयस्थ करके परीक्षा में प्रथमोत्तीर्ण हो जाऊँगा।

क्या अब भी कुछ बाकी है?

है नाथ! कब तक तरसाओगे? प्रतीक्षा करते करते आँखें मिचने लगीं और अंग प्रत्यंग शिथिल पड़ गये।

इस अनोखे बाग की सैर करते २ पैर थक गये। भौंरा का गुंजार रुक रहा। विकशित और संपुटित दोनों ही प्रकार की पुष्प-कलियाँ झड़ २ कर गिरने लगीं। कुछ फल तो डालों में लगे ही सूख गये और कुछ सूख कर नीचे गिर पड़े। गरम हवा के चलने से हरी हरी लतायें मुरझा;कर पीली पड़ गईं। कोयल के मधुर आलाप के बदले उलूक का रोम-हर्षण शब्द सुनाई पड़ता है। निरुत्साह और निरानन्द से हृदय काँपता है। अब, यहां पल भर भी ठहरने को जी नहीं चाहता।

रात दिन हिलने मिलने वाले प्रिय-मित्रों ने अकारण ही मुझे हत्यारे की नाईं इस सूने खंड़हर में छोड़ दिया। स्वार्थियों के तीक्ष्ण वाक्य-बाणों से शरीर छिन्न भिन्न हो गया। पश्चात्ताप की भीषणमूर्ति सामने खड़ी होकर डरवाने लगी। प्रकृति ने मृतक-संस्कार का काला वस्त्र धारण कर लिया। हाय! सिर पर दुर्वासनाओं के फलों का वज्र-प्रहार हो रहा है!

हे प्रभो, सन्ध्या के रंग बिरंगे बादल क्षण-भंगुरता में विलीन हो गये। अब, रात भर के लिये काली घटा एकत्र होने लगी, चन्द्र-किरणें मुझ पापी का कलंकी मुख दीख पड़ने के भय से अन्तःपुर में छिप रहीं। इस भयंकर स्मशान के समान सूनसान मैदान में अकेला मैं ही रह गया! क्या ही दुर्दशा हुई!!

जिस ओर आँख उठाता हूं, निराशा का अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता है। हाँ, केवल तेरे मिलने की उत्कण्ठा का एक ध्रुवतारा ही उत्तर दिशा में जुगजुगा रहा है।

हे प्रेम प्यारे! आज न मेरा कोई, न मैं किसी का। नाते और सम्बन्ध सब ही धूल में मिल गये। सहस्त्रों यातनायें भोग कर, अब तुम्हारे द्वार पर आ डटा! इस दीन के मिलने में क्यों विलम्ब करते हो? या अब भी कुछ रंग दिखाने को बाकी है?

* * *

निकुंज-शृंगार।

ज सूर्योदय के पहिले ही प्रेम-निवास की केलि-कुञ्ज में बड़ी उत्कण्ठा से पहुँच गया। इस विचार से गया था, कि वहां आप के विहार का गिरा हुआ हार व फूलों का गुच्छा मिल जायगा और मैं उसे बड़ी भक्ति-पूर्वक धारण कर लूंगा। मैंने इधर उधर बहुत देखा, पर चरणों के आभूषण के एक फूल को छोड़ कर कुछ भी न मिला, क्योंकि प्रेमीजन पुष्प-शृङ्गार मेरे पहुंचने के पहिले ही ले गये थे। अनेक प्रकार के फूल तोड़ कर मैंने एक माला बनाई और बीच के एक झुमके में उस फूल को लटका दिया।

उस फूल माला के धारण करने से मेरी शोभा चौगुनी हो गई, जिससे मुझ दीन भिक्षुक को बड़ा ही अभिमान

आ गया। दिन भर उस वाटिका में सैकड़ों मनुष्य आये और मेरा सौन्दर्य देख कर चकित हो गये। कई राजा महाराजाओं ने लालायित हो सहस्र गुण मूल्य पर माला मांगी, पर मैं तुच्छ कौड़ियों के बदले अपना सुन्दर शृङ्गार कैसे बिगाड़ बैठता? क्या कहूं, पर-सम्पदा देख कर जलने वाले अनेक दुष्टों ने माला छीन लेने का बहुत कुछ यत्न किया, किन्तु मेरी सावधानी से उनकी एक न चली।

सन्ध्या हुई। बगीचे में सन्नाटा छा गया। मैं आप के आने की राह देखने लगा। मैंने दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली थी, कि इस माला को भगवान् प्रेम-देव के चरण कमलों पर ही चढ़ाऊंगा।

अनन्य प्रेमियों के साथ आप का शुभागमन हुआ। मैं भय और लज्जा से नीचे की ओर मुख कर के खड़ा हो गया और अपने गले से माला उतार कर धीरे से आप के चरणों पर छोड़ दी।

अय दीन-बन्धो! आप ने इस क्षुद्र सेवा के बदले अपना सारा पुष्प-शृङ्गार उतार कर मुझे पहिना दिया और हंस कर मुझ दीन को अपने हृदय से लगा लिया।

तू मेरा भिखारी है।
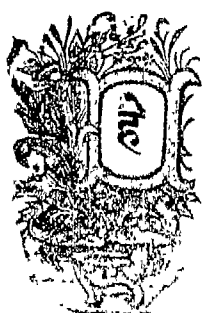
राज राजेश्वर! तू मेरे द्वार का भिक्षुक है! मैं दिन भर कठिन परिश्रम करते २ एक २ कौड़ी से अपना भण्डार भरूंगा, और सन्ध्या समय तेरी झोली में सब ही प्रसन्नता पूर्वक उड़ेल दूंगा।

जब तू अपनी एक किरण के तेज से समुद्र को मरुभूमि बना देगा, तथा दिवाकर के प्रचण्ड प्रताप को अबला रात्रि के कटाक्ष से पराजित कर के मेरे द्वार पर चेतावनी के वैराग्य-पूर्ण गीत गायेगा, मैं शीघ्र उठ कर तेरा आतिथ्य-सत्कार करूंगा। उस समय, जो तू मांगेगा, मैं सहर्ष भेंट कर दूंगा।

हे विश्वम्भर, जिस भवन को मजबूत करने में सांसारिक-जन सदैव दत्तचित्त रहते हैं, जिसमें कामना के उच्च-स्तम्भ बनाना ही परम कर्तव्य समझते हैं और जिसकी क्षण-भंगुर दीवाल पर विविध प्रकार के चित्र लिखा करते हैं, उस स्वर्गीय गृह को मैं पल भर में तेरे लिये एक टूटी फूटी झोपड़ी की नाईं खाली कर दूंगा।

हे जगन्नायक, जब तू बाल-रवि-रश्मियों का रंगा हुआ काषाय वस्त्र धारण किये, कृपा-कटाक्ष का दण्ड लिये, प्रकृति-पात्र में भिक्षा लेने को आवेगा, तब मैं तेरे चरण-कमल अश्रु-जल से धोकर हृदय-पद्मासन पर तेरी अप्रतिम यति-मूर्ति विराजित करूंगा। हे विगतकल्मष! मैं बड़े ही प्रेम से तेरा पात्र अपनी आत्मा से भर दूंगा।

हे प्यारे बाल सन्यासिन्! मैं तुझे तन, मन, धन, प्राण और आत्मा सब ही प्रदान कर दूंगा। यदि, मैं तुझे न देकर कोई वस्तु छिपा लूंगा, वह मुझे अत्यन्त दुखदाई हो जायगी और कराल-काल एक न एक दिन मुझे उससे वंचित कर ही देगा। तो, मैं प्रसन्नता पूर्वक तेरे चरणारविन्दों पर सर्वस्व क्यों न चढ़ा दूं?

ॐ ॐ ॐ

मेरा और तेरा नाता।

लोग पूछते हैं, कि 'क्या तुम उनको जानते हो?' तो मैं कह देता हूं, कि 'हां!' किन्तु हे मेरे देवाधिदेव! मैं उनसे यह नहीं कह सकता, कि मेरा तेरे साथ क्या सम्बन्ध है?

हे जगत्पिता! मैं तेरा पुत्र कैसे हो सकता हूं? जब मैं प्रौढ़-समाज से तिरस्कृत होकर खिन्न-भाव से बैठ रहता हूं, तू मेरे मन को अनेक प्रकार के खिलौने देकर प्रफुल्लित कर देता है। जब मैं दुराग्रह पूर्वक कुकर्म में प्रवृत्त होने लगता हूं, तू मुझे यथोचित दण्ड देकर सावधान कर देता है। किन्तु, मैं सदा तेरी आज्ञा की अवहेलना ही किया करता हूं। सुना जाता है कि पिता के गुण पुत्र में पाये जाते हैं, पर हे नाथ, मुझ मन्द-मति में इस सिद्धान्त का पूर्ण अभाव है और इसी कारण मुझे तेरा पुत्र बनते हुये लज्जा आती है।

हे दीनबन्धो! जब मैं निःसहाय होकर बिना भोजन और जल के निराशा का आश्रय लेकर बैठ जाता हूं, तू स्नेह-दृष्टि से हेर कर मेरे आगे अपने प्रसाद का अर्ध भाग रख देता है।

जब मैं मोहान्धकूप में गिर कर चारों ओर चिल्लाता हूं, लोग हंसते हैं और तालियां बजाते हैं! परन्तु हे प्रभो! उस समय एक तू ही मेरा हाथ पकड़ कर बाहर निकालता है। मैं तेरी दया को भूल कर फिर प्रमत्त हो जाता हूं और तेरे साथ कलह करने में परम सुख मानता हूं। तो, मैं किस प्रकार तेरा भाई बनने के योग्य हूं?

हे जगन्नायक! मैं तेरा सेवक भी नहीं बन सकता, क्योंकि मुझ महाभिमानी का मस्तक तेरे चरणों पर कभी नहीं झुकता और यह अनित्य शरीर तेरी सेवा न करने में ही सुख मान बैठा है।

हे विश्वम्भर! तू मेरे साथ चाहे जो सम्बन्ध माने, पर मैं तेरे साथ कोई नाता नहीं मान सकता। हाँ, मुझे इतना कहने में ही गर्व रहे, कि तू मेरा 'सर्वस्व' है और मैं तेरा कोई हूं।

हे प्रियतम! मेरा तेरे साथ सगे से सगा नाता यही हो सकता है, कि "तू प्रेम है! एक मात्र प्रेम है!! मेरा प्राणाधार केवल प्रेम है" !!!

आदर्श-उपदेश।

महोपदेशक, जब मैं प्रत्येक दृग्गोचर पदार्थ को अथवा कार्य कारण को अनेक परिवर्तन होते हुए भी अंत को स्वतन्त्रता के अनिवार्य प्रवाह में बहते हुए देखता हूं, तब मुझे सत्यासत्य का तत्वज्ञान प्राप्त हो जाता है।

जब मैं सूर्य, चन्द्र व तारागण तथा प्राकृतिक ऋतु-संहार पर विचार करता हूं, तब मुझे निष्काम कर्म-योग की शिक्षा मिल जाती है।

जब सन्ध्या कालीन रंग बिरंगे बादल क्षण भर में अनन्त आकाश में लीन हो जाते हैं, जब दिन के प्रचण्ड प्रकाश पर रात्रि का तिमिर आतंक जमा लेता है, और जब खिला हुआ फूल मुरझा कर गिर पड़ता है, तब मुझे नश्वरता एवं वैराग्य का अनुभव हो जाता है।

जब मैं विविध वर्णाङ्कित तितली के पंखों और मृग शावक के करुणा पूर्ण नेत्रों पर ध्यान देता हूं, तब हिंसा से अत्यन्त घृणा होकर मुझे दया और परोपकार का सदुपदेश सहज ही मिल जाता है।

जब नींद भर सोने के उपरान्त बिना किसी कठिनाई के आंखों पर से पलक उठ जाते हैं और नव जीवन प्राप्त करता हुआ सृष्टि-सौन्दर्य देखता हूं, तब कृतज्ञता तथा ईश्वराराधन का सच्चा रहस्य प्रकट हो जाता है। कहां तक कहूं, मुझे जीवन के प्रत्येक पल में कुछ न कुछ उपदेश मिलता ही रहता है।

हे परमोपदेशक, तेरा उपदेश किसी देश विशेष अथवा

काल विशेष पर निर्भर नहीं है। यह सारी प्रकृति ही तेरे उपदेशों से ओतप्रोत है। तेरी शिक्षण-शैली मनोहारिणी एवं प्रभावशालिनी है। तू ने प्रत्येक विषय का साक्षात्कार ही नहीं किया, प्रत्युत उसका उत्सृजन करके उसमें अपनी प्रेम-शक्ति का संचार कर दिया है।

तेरा सर्वोत्कृष्ट उपदेश यही है कि तूने भिन्नता में अभिन्नता, अपूर्णता में पूर्णता तथा जीवन-मरण में मुक्ति प्रकाशित कर दी है!

कृपा-कटाक्ष ।

प्रभो! यह तेरी कृपा ही तो है, जो नित्य अनन्त आकाश को छिन्न भिन्न करता हुआ प्रभात का प्रकाश मेरे अंधतम गृह को आलोक पूर्ण कर देता है, और शीतल-समीर के झोंके तेज धूप से पसीना बहते हुये शरीर में पंखा डुला कर चले जाते हैं।

जब मंद-गति-गामिनी नदी देखकर विषय-प्रज्वलित नेत्र ठंडे पड़ जाते हैं, जब दौड़ धूप से थके हुये अंग मैदान की हरियाली पर लेटने से चैतन्य हो जाते हैं, जब स्वतंत्रता-प्रिय पक्षि-संघ का मधुररव सुनकर संगीत का उच्च भाव प्रगट होता है और जब रम्य मालती-कुञ्ज में बैठ कर शरद्-यामिनी की धवल-छटा दिखाई देती है, तब मुझे तेरी कृपा का पूर्ण अनुभव हो आता है।

हे दयामय, वियोग में मिलने की आशा, बंधन में मुक्ति का प्रलोभन, दुष्कृत्य में पश्चात्ताप, विषयानुराग में वैराग्य,

पाप में घोर दण्ड, सत्यासत्य निर्णयमें आत्म-प्रतीति, अविद्या में मुमुक्षुत्व, सृष्टि में व्यष्टि-समष्टि-सम्बन्ध तथा सत्ता में आत्मा तेरी सहज कृपा का ही विकाश है।

तू बिना ही बुलाये मेरा प्रत्येक कार्य देखने को आ जाता है, कान में दो बात कहने पर भी सुन लेता है, मुझ अभिमानी पंडित को अल्पवयस्क बालक की नाईं पढ़ा जाता है और रसिक के हृदय को ओज से परिपूर्ण कर देता है।

हे कृपा सिन्धो, यह तेरा कृपा कटाक्ष ही है, कि तू अपने हृदयसागर में लीला मात्र से ही अनन्त ब्रह्माण्डरूपी तरङ्गावलि उठा कर फिर अपने वक्ष-स्थल में लीन कर लेता है। मैं तेरी आज्ञा की अवज्ञा करके नित्य एक न एक उपद्रव करता रहता हूं, पर धन्य जीवन-सर्वस्व ! तू अपनी आंखें मेरी आंखों से मिलाकर हंसने लगता है और मेरा नीच मन लज्जित होकर तेरे प्रेम में तल्लीन हो जाता है।

* * *

ब्रह्मात्मैक्य।

हे अनन्त ! जब मैं तेरी महाकाव्य का सङ्गीत लय द्वारा पाठ करता हूं, तब मेरी और तेरी एकता हो जाती है। मनो-दृष्टि से छन्द के पृथक २ अक्षर, बुद्धि से पद-प्रसार तथा अन्तःकरण से वाक्य-विन्यास प्रकट हो जाता है। किन्तु जब मैं मन, बुद्धि एवं अन्तःकरण का आत्यंतिक लय कर लेता हूं, तब ही मुझे तेरे पद्यों का भाव स्पष्टतः निष्पन्न होता है। यही तो आत्म-एकीकरण है। तू भाव का एकीकरण कर के मेरी आत्मा पर अपना प्रतिबिम्ब डाल देता है। इस बन्धन में

मुझे ब्रह्मात्मैक्य रूपी वास्तविक नित्यानन्द का अनुभव होता है !

हे जगदाधार ! प्रकृति का यथेष्ट संक्रमण-परिघ देख कर, मुझे उसका विन्दु-विशेष मानना पड़ता है। इसी विन्दु के स्फुरण के आधार पर विकाश के भिन्न २ रूपों में संसार-चक्र का निर्माण होता है। किन्तु, जब मैं वासना क्षय द्वारा इस अपने क्षुद्र विकाश-चक्र को संकुचित करते २ केन्द्र के अत्यन्त निकट ले जाता हूं, इसका स्वरूप से नाश हो जाता है और केन्द्र में आ मिलता है। इस विकाशाकुंचन एवं केन्द्र-संमिश्रण में ब्रह्मात्मैक्य अभिप्रेत होता है।

हे सर्वव्यापिन् ! तेरी व्यापकता पर ध्यान देते २ मैं अपनी अहंता और भिन्नता भूल जाता हूं। इस तल्लीनता से मुझे प्रपंच-द्वय में एक ही अखण्ड नित्य मूल तत्व की अपरोक्षानुभूति हो जाती है। जहां मैं अपने विशुद्ध आदर्श का नैसर्गिक साम्य पा लेता हूं, वहीं मेरी आत्मा अपने आप को भूल जाती है और इस एक-रूपता में द्वैतता समूल नष्ट हो जाती है।

हे अखण्डाद्वैत ! तेरे उज्ज्वलितउच्च एवं त्रिगुणातीत प्रेम में द्रष्टा का दृश्य में, उपासक का उपास्य में व प्रेमी का प्रेय में लय हो जाता है। यहां ज्ञान भक्ति में किञ्चिन्मात्र विरोध नहीं रहता। इसी एक अनन्य परानिष्ठा से तद्रूपता का अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हो सकता है।

तेरे लोक में मेरी पुकार।

हे सर्वज्ञ, उस सुविशाल विराट-भवन में, जहां अगाध सागर की तरल-तरंग-माला गर्वोन्नत होकर उदार नभोमण्डल के वक्षःस्थल को ताड़ित कर रही है, किन्तु उसका शब्द कमल-नाल के छिद्र में खेलती हुई पवन की समान अदृष्ट रूप से विलीन हो जाता है, जहां नन्दन-गन्ध-नन्दित आनन्द-निकेतन की निकुञ्ज-छाया प्रत्येक अध्यारोपित यात्री के शिथिल अंगों पर पड़ती है, और जहां की सहज-स्वतन्त्रता स्वर्गीय सुख के साथ प्रतिवाद करती है, कृपा कर मुझे वहां खड़े होने को एक अल्प और तुच्छ स्थान दे दे।

हे नाथ, उस स्थान पर संकुचित भाव से खड़ा होकर, तेरा समुदात्त गायन सुनूंगा। तेरे दया-सम्पन्न अति-मधुर स्वर मेरे सूचिका भेदी छिद्र में प्रवेश करेंगे। उस प्रेम-सौरभ-सुवास की श्वास से मेरा सम्पुटित हृदय-पद्म विकशित हो जायगा। धन्य इस सरोज-विकाश को!

हे जगदीश, मेरे अंतरंग-कंज का मकरंद क्षण प्रतिक्षण उल्लसित होकर प्रेरणा-पवन में व्याप्त हो जायगा, और तब तेरे दूत के लोलुप चक्षु-चंचरीक उसे पान कर तेरे दिव्यलोक को गुंजित कर देंगे।

मेरे अलोल नेत्र बन्द हो जायंगे और मुख से एक शब्द भी न निकलेगा। किन्तु हे प्यारे! तुझे मेरा सब रहस्य प्रकट हो जायगा, क्योंकि मुझ एकान्तवासी मौन-व्रती की विरहार्त्त पुकार तेरे अगम्य लोक को प्रतिनादित कर देगी!

गुण-गान।

हे मेरे स्वामी, क्या तुम आज, मेरी जीवन-निकुंज में गायन सुनने को आओगे? मैंने अपनी वीणा के स्वर तेरी कृपा पूर्ण इच्छा के साथ मिला लिये। नवीन-सुख की अभिलाषा से परिपूरित उपवन बसन्त ऋतु की सूचना देता है और मेरा विकुंठित कण्ठ समयानुकूल राग अलापने को उत्कण्ठित हो रहा है।

आज, मैं अपने संगीत-गत-मधुर स्वरों के द्वारा नित्यानन्द गगनाञ्चल को उस मंगल-विनोद से अभिव्याप्त कर दूंगा, जिसका जन्म तेरी सुचारु-मन्द-स्मिति से होता है। मेरा संपुटित अन्तरंग सरोज विकशित हो जायगा और उसके भीतर का वासना-भ्रमर उड़ कर तेरे चरण-कमलों का पराग पान करेगा।

यद्यपि तू निर्गुण है, तथापि स्वप्रेम-स्थापित गुणावली का अविरोधात्मक गान सुनने से तुझे मेरे लिये सगुण होना पड़ेगा। मैं अपने हृदय के उद्गार निस्सरित करके प्रकृति के प्रत्येक परमाणु में परिस्रावित कर दूंगा। तेरी अगाध दया के स्मरण से गद्गद कण्ठ हो जाने के कारण स्वर मन्द पड़ जायगा और यही मेरे गायन में मीड़ एवं गमक का काम देगा। जब मैं अपने अपराधों पर, तेरे अभिमुख, पश्चात्ताप करूंगा, तब मेरा स्वर कम्पायमान हो जायगा, और उस समय की आर्त्त पुकार तान में परिणत हो जायगी।

हे भक्त वत्सल, मैं तेरा गुणगान करते २ थकित हो गया और यह मेरी वीणा जीर्ण होकर जरजरित हो गई, किन्तु तेरा शुभागमन अद्यावधि न हुआ। यदि आज के दिवस भी तू मेरी जीवन-निकुंज में गायन सुनने को न आयगा, तो वीणा को

एक ओर रखकर मैं मौन व्रत धारण कर लूंगा, पर तेरा गुणगान किस प्रकार भूलूंगा, क्योंकि यह मेरा जीवन, प्राण मन और वाणी सब ही तेरे गायन द्वारा संचालित हो रहे हैं।

आत्म-विस्मृति में परमानन्द।

हे सर्वभूतात्मन्! जब मैं तेरी व्यापकता और सर्वज्ञता पर गुणगान करता हूं, तब मेरी 'दश तार युक्त वीणा' के भिन्न २ स्वर तल्लीनता तथा एक रूपता में परिणत हो जाते हैं, मेरी चतुर्धा वाणी तेरी अनन्तता और अखण्डता में विलीन हो जाती है, और मेरी अहंता, देहाभिमानता नष्ट हो जाती है। अहा! उस समय मैं तेरे प्रेम में प्रमत्त होकर तुझे क्या कहता हूं, सो तूही जान सकता है! भेदभाव-कारक "स्वत्व" अर्थात् वृथा अहंकार तेरे पुनीत चरणों पर समर्पित हो जाता है। स्वार्थ-त्याग अथवा आत्मोत्सर्ग की अपरोक्षानुभूति होने पर नित्यता के लोक में निवास करता हूं। वहां मृत्यु, मृत्यु नहीं रहती और दुख, दुख नहीं गिने जाते! यही एक मात्र श्रेयस्कर सुअवसर है, जहां अत्यन्त विपरीतता की भी समानता हो जाती है, जहां अनुमान की प्रत्यक्ष प्रतीति अथवा जीवन-परीक्षा की उत्तीर्णता हो सकती है।

हे आत्माराम! तेरे ध्यान में जब मग्नावस्था प्राप्त हो जाती है, मैं उसे तुरीयावस्था से भी परे मान लेता हूं! इसी परमोत्कृष्ट दशा में मुझे परमानन्द की तृप्ति होती है और इसी

आत्म-विस्मृति को मैं सच्ची आत्म-जाग्रति कहता हूं, क्योंकि जो तेरे प्रेम में मतवाला हो गया है वही सावधान और सचेत है, अन्य सांसारिक प्रबुद्ध-जन चर्म चक्षुओं से हेरते हुए भी मोहनिद्रा में सो रहे हैं ।

❧ ❧ ❧

वासना-क्षय ।

हे अहेतुक दया-सिन्धो ! जब जब मेरी आत्मा तेरी अलौकिक छवि देखने को अधीर और व्याकुल हो जाया करती है, तब न मालूम कौन सा कराल कालान्धकार मेरी उत्कण्ठा रूपी ज्वलन्त ज्योति को निर्वात कर देता है और कौन सा भीषण कृत्य मुझे भयभीत कर के पीछे हटा देता है !

सुनता हूं, कि ये मेरी दुर्वासनायें ही हैं, जो मुझे तुझसे मिलने में विघ्न और बाधायें उपस्थित कर रही हैं । ये कामनायें मेरे वर्त्तमान और भावी शुभ विचारों को अतीत कर के आशा पर पानी फेर देती हैं और निरुत्साह से मेरे मार्ग को अवरुद्ध कर लेती हैं । मेरे हृदय के प्रत्येक धड़क पर तेरे मिलन-सुख के स्वर सुनाई पड़ते हैं, पर इन वासनाओं के आन्दोलन के कोलाहल से, मैं उन स्वरों को आशु का क्षण-स्थायी भाग बना लेता हूं ।

मैं संसार-सागर के उस पार जाना चाहता हूं, पर वासना-रूपी जल को बिना पीछे हटाये ही तैर कर आगे निकल जाने की चेष्टा करता हूं । मैं हाथ पैर तो फड़फड़ाता हूं, किन्तु विषय-जल मुख में भर जाने से आत्मा घबड़ा उठती है और ये नेत्र भी बन्द हो जाते हैं ।

यद्यपि मैंने सहस्रों वस्त्र धारण किये और उतार कर फेंक दिये, किन्तु मैंने तेरे दिये हुये धवल-परिधान को कभी न धारण किया। हे नाथ! हे परम पुरुषोत्तम! आज तू मुझे उस महा-शक्ति को प्रदान कर दे, कि जिसके द्वारा मैं इस जन्म-परम्परा गत वासना-वसन को छिन्न भिन्न कर दूं और तेरे चरणों में अपने क्षुद्र हृदय को विसर्जित कर सकूं!

* * *

उस समय!

ऐ मेरे प्रेम! "उस समय" अवश्य मेरे पास आ जाना, जब रात्रि के निविड़ तिमिर में, मेरे पैर दुर्गम-मार्ग के वासना-जाल में उलझ जावें, और यह विरह-पीड़ित हृदय तेरे मिलने को अधीर हो जावे;

जब लोभ-साम्राज्य के नियम मेरे उच्च विचारों को फंसा कर, मुझे सत्य-पथ से हटाने के लिये भर्त्सना देने लगें, और मेरी अन्तरात्मा तेरे अकुतोभय चरणों की शरण ढूंढ़ने लगे;

जब मेरे चक्षु-खंजन तेरे दिव्य-दिवालोक में उड़ जाने को अधीर हो जावें, और मोह-पञ्जर में अपने प्रफुल्लित पंख फड़फड़ाने लगें;

जब मेरे दोनों हाथ सकाम-कर्म के प्रवाह में तैरते २ शिथिल हो जाने के कारण तेरे कर-कमल का आश्रय लेने को व्याकुल हो जावें;

जब मैं सांसारिक ऐश्वर्य में प्रमत्त होकर तेरे परम कृपा पूर्ण उपकार भूल जाऊं, और यह मेरा चंचल मन आधिभौतिक

एवं क्षण-स्थायी सुखों का उपभोग करना ही परम पुरुषार्थ मान ले ;

जब मैं 'स्व-परत्व' का भेद छोड़ कर विश्व-मात्र में तेरा ही स्वरूप देखने को उत्कण्ठित हो जाऊं, और आत्मोत्सर्ग की पुष्पाञ्जलि तेरे पवित्र चरणों पर चढ़ाने को नत-जानु होने लगूं ;

जब काल-सागर में मेरी जीर्ण नौका डूबने लगे, और मैं तरल-तरंगों के बीच में तुझे कंठ से लगाने को प्रेमाधीर होकर दोनों हाथ बढ़ाने लगूं ; और जब,

मेरे मुख से ये शब्द निकलने लगें, कि 'हे जीवनाधार ! हे प्रियतम !! हे मेरे प्रेम !!! तब,

हे स्वामी ! "उस समय" अवश्य ही मुझ दीन के पास आ जाना !

भावी-जीवन ।

हे मेरे प्रिय स्वामी ! वह सु-दिवस कब आयगा, जब मैं वासना के मलिन वस्त्र उतार कर फेंक दूंगा और अपने गौराङ्ग पर तेरी मुसक्यान रूपी किरण का प्रकाश पड़ने दूंगा । उस दिन मेरे नेत्र तेरी प्रेम-प्रतीक्षा में बंद हो जायँगे ! तू आकर अपने कोमल स्पर्श से उनके पलक हटा देगा । मैं तेरे गले में दोनों हाथ डालकर भेंट करूंगा और तू अपने नेत्रों के विलोल कटाक्ष से मेरी विरह-पीर दूर लेगा !

हे प्राणाधार, वह सुअवसर कब मिलेगा, जब मैं नित्य के शुभ विचारों का साक्षात्कार कर लूंगा । मेरा देहाभिमान समूल नष्ट हो जायगा । तेरे प्रेम की ज्योति मेरे अंधेरे घर में जलने लगेगी । सुख-दुख, संयोग-वियोग और जीवन-मरण में समता हो जायगी । मैं अपने विरह-पीड़ित नेत्रों का जल तेरे प्रेम-पात्र में भर लूंगा और जब तू मेरे अंतरंग भवन में पदार्पण करेगा, तब मैं तेरे धूल-धूसरित चरणों को उस पवित्र जल से धो दूंगा ।

हे प्रियतम, वह शुभ घड़ी कब होगी, जब मैं जगत के सत्ताधिकारियों से निरपेक्ष होकर तेरे मिलने की उत्कण्ठा में उन्मत्त हो जाऊंगा । उस समय मैं अपना हृदय द्वार खोल कर बैठ जाऊंगा । आधीरात होने पर तू दबे पांव मेरे समीप आकर मेरा हाथ पकड़ लेगा । तू मेरी ओर मुसकरावेगा और प्रेम कटाक्ष से माया का आवरण छिन्न भिन्न कर देगा । मैं तेरे मुखारविन्द की ओर अनिमेष दृष्टि से देखूंगा और इस दर्शन में मुझे आत्म-ज्ञान का सच्चा रहस्य ज्ञात हो जायगा । उस समय गला भर आने से मेरे मुख से इतने ही शब्द निकल सकेंगे कि, ऐ मेरे प्यारे प्रेम............................ ।

केवल विनय ?

हे परम प्रकाश, जब सांसारिक सौभाग्य का आवरण मेरे चंचल नेत्रों पर पड़ जावे, मोह मदिरा में प्रमत्त हो कर तेरा प्रभुत्व भूल जाऊं और विजन देश में अगम-मार्ग-गामी बनने की इच्छा करूं उस समय तेरा प्रेम-पुष्प कराल खड्ग के रूप में मेरे सम्मुख आकर भयभीत कर दे !

हे देवाधिदेव, जब मेरे अनन्य प्रेमी मुझे जन-शून्य कानन में छोड़ कर चले जावें, और आकाश की ओर अलक्ष्य रूप से हेरता हुआ, उनके वियोग में फूट २ कर रोने लगूं, तब तेरे गले का हार मेरे हाथों पर गिर पड़े और उसके निर्मल रत्नों में वियोगियों की आकृतियां दिखाई देवें।

हे नाथ, जब दिन भर कठिन परिश्रम करते २ मेरे अंग शिथिल पड़ जावें, वेग से सांस चलने लगे, और हताश हो कर जीवन-तरु की छाया में बैठ जाऊं, तब मेरे मुख से यही वचन निकलें "तेरे विश्व-वृक्ष का फल चख लिया, उस में अनेक खट्टे मीठे स्वादु पाये, किन्तु तृप्ति न हुई ! अब तो, मेरी इच्छा तेरे 'प्रेम-फल चखने,की है। उसमें विष-रस क्यों न भरा हो और उसके छूने सेही मेरी मृत्यु हो जावे, तो भले ही हो।"

हे प्रियतम, जब प्रगाढ़ निद्रा से मेरी आंखों पर पलक आप से आप गिर पड़ें, कार्यालय से छुट्टी लेकर अपने देश को चलने लगूं, तेरा दूत मेरा अतिथि बन जाये और मैं निर्लज्ज बन कर दुर्वासनाओं से भरी हुई मुट्ठियां खोल दूं,

तब हे मेरे प्यारे! कृपा कर तुम वहां आ जाना और मेरे माथे पर अपना हांथ फेर देना। मैं भी अपना अत्यन्त प्रिय हृदय-रत्न निकाल कर तेरे मुकुट के अधोभाग में जटित कर दूंगा और तेरा कर कमल चूम कर शान्ति में सो जाऊंगा।

प्रेम और बन्दी।

भाई, तू इस कराल कारागृह में कैसे आया?

बन्दी ने कहा—"क्या यह कारागृह तुम्हारी दृष्टि में कराल ही है? यह अत्यन्त मनोरञ्जक, प्रलोभी, वेदना मय एवं अद्भुत है। जब मैं इसके सामने होकर आनन्दोपवन में वायु-सेवनार्थ जाया करता था, इस की बाहिरी चमक दमक और निराधार रत्नमा-मण्डप की छटा मन को बलात् खींच ले आती थी। मुझे तो अपना स्वास्थ्य ठीक करना था, इससे आनन्दोपवन में ही जाना मेरा परम अभीष्ट था। उस रम्योपवन में मेरा मन बहुत प्रसन्न हो गया, किन्तु योगियों से भी दुःसाध्य इन्द्रियग्राम मुझ सांसारिक जीव से क्यों कर वशीभूत होने चला? सारांश, एक दिन मैं इस अद्भुत गृह पर ऐसा मोहित हो गया कि अन्तरात्मा के बार २ अनुरोध करने पर भी, मैं इस के भीतर चला ही गया। यहां मैं ने अनेक सुन्दर काम-वाटिकायें, विषय-अट्टालिकायें और केलि-कलायें देखीं। बहुत काल तक इस गृह में रहने से मेरा

स्वास्थ्य फिर बिगड़ गया और मानसिक शैथिल्य तो ऐसा हुआ कि मेरा अमूल्य जीवन चिन्ताग्रस्त होकर निस्सार और प्रभा-हीन हो गया। मैं ने निकल भागने की चेष्टा की, तो फाटक बन्द! हा! मैं ने अपने ही हाथों फाटक का ताला लगा दिया और कुञ्जी फेंक दी!"

क्यों भाई, तुझे ये हथकड़ियाँ और बेड़ियां किस ने पहनाई? उसने उत्तर दिया—"क्या कहूं, इसी कारागृह की वाटिका से अनेक विकसित एवं सुगन्धित सुमन संग्रह किये, और गले के लिये माला तथा पैरों और हाथों के लिये आभूषण बनाये। जब मैं ने उन्हें धारण किया, तो माला की फांसी और आभूषणों की हथकड़ियाँ और बेड़ियां हो गईं! हा! ये बेड़ियां इतनी पक्की हैं कि इन्हें तोड़ कर मैं किसी भांति नहीं भाग सकता हूँ।"

बन्दी, क्यों घबड़ाता है? तू ने अपने अपराधों पर पूर्ण पश्चात्ताप कर लिया। मैं तेरा बन्धन काट कर, तुझे अभी कारागृह से मुक्त किये देता हूँ। मैं साक्षात् 'प्रेम' हूँ। तेरे सरीखे शुद्ध अंतःकरण वाले बन्दियों के कष्ट निवारणार्थ मुझे कारागृह में भी आना पड़ता है और यही मेरे अवतार का परम रहस्य है।

सहज-विजय।

सूर्योदय होने ही कर्म के रणाङ्गण में सहस्त्रों अस्त्र शस्त्र धारी योद्धा जीवन-संग्राम करने को एकत्रित हो चले। मुझ अनाथ को मार्ग में पड़ा देख कर किसी २ ने तो करुणा से दो बूंद आंसू गिरा दिये पर सैकड़ों धनाभिमानी मुट्ठी भर धूल फेंकते हुये कह कर चले गये, कि 'धिक्कार तेरे जीवन पर !'

मैंने सब ही उत्साह-शील आशा वादियों से धिक्कार उड़ा देने का यत्न पूंछा, किन्तु वे सिर हिला कर हँसते हुए चले गये।

दो पहर हुआ, कि रणभूमि में भयानक कोलाहल तथा चीत्कार का शब्द होने लगा। अशान्ति और असन्तोष का पूर्ण साम्राज्य जम गया। एक दूसरे से प्रचार २ कर स्वार्थ वश लड़ने लगे, किन्तु किसी हृदय पर विजय प्राप्त न हो सकी !

अब सन्ध्या-काल आ गया। वीर योद्धाओं की मुख श्री की लालिमा रव्यस्त के साथ ही मलिन पड़ गई। हताश हो सब ही लौटने लगे। लज्जित हो कर किसी ने मेरी ओर न देखा और न धिक्कार का अर्थ ही बतलाया।

क्या मैं वास्तव में धिक्कारणीय हूं ! क्या मैं जीवन संग्राम में न जाने से का-पुरुष हो गया ? क्या दूसरों के ढकेलने और धक्का देने में ही वीरता प्रकट होती है ? क्या दूसरे का मान मर्दन करके अपना उत्कर्ष प्राप्त करना श्रेयस्कर है ? यदि नहीं तो ये योद्धा मुझे आलसी और नीच क्यों कहते हैं ? यदि जीवन-संग्राम में जाना ही कर्त्तव्य है, तो वहां विजय-लाभ कैसे हो सकती है ? इत्यादि संकल्प विकल्प जब मेरे अधीर

मन में उठ रहे थे, तब मुझे सामने बड़ा प्रकाश दिखाई दिया।

देखते ही देखते एक प्रभापूर्ण रथ मेरे पास खड़ा हो गया। उस का सारथी उतर कर मुझसे बोला 'यदि तुम्हें जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करना है, तो इस रथ पर आरूढ़ हो जाओ। इसका नाम 'प्रेम स्यन्दन' है। इसके प्रताप से सहज ही विश्व-विजय-प्राप्त हो सकती है। क्योंकि जहां से बड़े २ बुद्धिमान वीर योद्धा भी पराजित हो लौट आते हैं, वहां एक प्रेमी ही सहानुभूति और निष्काम प्रेम द्वारा विजय-लाभ कर सकता है।

* * *

भिखारी से भेंट।

दो

पहर दिन चढ़ने पर, मैंने अपनी झोली उठाई और भीख मांगने को निकल पड़ा। दिन भर भटकता फिरा, पर किसी के दरवाजे दो दाने भी न मिले। निराश हो गांव से लौट आया। झोपड़ी को चल दिया। दो दिन का भूखा था। पैर पीछे पड़ते थे। थका मांदा सड़क पर एक पेड़ के नीचे बैठ कर अपने खोटे भाग पर रोने लगा, 'हे विधना! मुझ अभागी से ऐसे कौन पाप हुये कि जनम भर विपत्ति में ही दिन काटने पड़े। मुझे लूला लंगड़ा बना दिया तो पेट भर खाने को तो मिलता जाता। द्वार २ भीख मांगता फिरता हूं पर धनान्ध लोग मुझे कुत्ते की नाईं दूर से ललकार देते हैं। हाय! ऐसे जीने से तो मरना ही अच्छा है!

अस्तु रोता हुआ फिर आगे चला। थोड़ी ही दूर गया था कि सामने एक रत्न-जटित-सुवर्णरथ दिखाई दिया। उसका तेज सूर्य के समान था मालूम हुआ किसी राजा की धूम धाम से सवारी आ रही है! रथ मेरे निकट आ गया। सैनिक लोग मुझे सामने से हटाने लगे। मैं ज़ोर से चिल्ला उठा 'महाराज इस लूले लँगड़े भिखारी को भी कुछ देते जाना।' पर उस धूम धाम में मेरी कौन सुनता था?

आश्चर्य कि रथ ठहरा लिया गया और वह राज राजेश्वर मुझे अपने पास बुलाने लगा। अहा! उसने अपनी अमूल्य अँगूठी उतार कर मेरी अँगुली में पहिना दी फिर हाथ पकड़ कर मुझे अपने रथ में चढ़ा लिया और लोग आश्चर्य से देखते रह गये!

मैंने जान लिया कि निःसन्देह यह दीनबन्धु प्रेम देव ही हो सकते हैं, जो मुझ ऐसे दीन भिखारियों को भी हृदय लगा कर मिलते हैं।

आधी रात।

आधी रात का समय है। श्याम वर्ण मेघ-माला चारों ओर से घिर आई है। बरसा रिम-झिम हो रही है और बादलों के निरंतर गर्जन से हृदय काँप उठता है। चपला के बीच २ चमकने से सूची-भेद्य अंध-कार में पर्वत-माला के अतिरिक्त कुछ भी नहीं सूझ पड़ता।

चलते चलते, मैं उस एकान्त भवन में पहुँच गया। मेरा मन आनन्द में नाचने लगा और उसके

मिलने की उत्कण्ठा क्षण प्रति क्षण बढ़ने लगी । द्वार बन्द था और पहिरे वाले सोते थे। मैं धीरे २ अक्षम्य अपराधों से भयभीत होता हुआ, दरवाजे के पास पहुँच गया। ताली बजाई। कुछ उत्तर न मिला। सीटी दी, पर व्यर्थ! अब तो वियोगानल से मेरा शरीर जला जाता था। तो भी, मैंने निर्लज्जता से सांकड़ खटखटाई और कान लगाया, तो गीत वाद्य का शब्द सुनाई पड़ा।

मुझ से न रहा गया और चेतनाचेतन का विचार न करते हुये विरहाकुल हो ज़ोर से यों पुकार उठा, 'प्यारे! किवाड़ खोलो।'

भीतर से आवाज़ आई, 'नहीं, तुमको देर हो गई है, अब नहीं आ सकते।' मैं सकरुण हाथ जोड़ कर विनय करने लगा, "हे नाथ, जब तेरा निमंत्रण गया, मैं वासना-ग्रह के क्षण-स्थायी भोग विलासों में लिप्त था और इसीसे उस पर कुछ ध्यान न दिया। जब तेरे दूत मेरे दरवाजे के सामने से निकले, मैंने उनका अनादर किया और अपने क्षुद्र अहंकार के कारा-गृह में रहना ही परम सुख मान लिया। हे राज राजेश्वर, जब तेरी असीम कृपा के पत्र पहुँचे, मैंने उन्हें बिना बांचेही चीड़ फाड़ कर अन्धतम कूप में फेंक दिया। ये सब मेरे ही अपराध हैं। किन्तु आज, तेरे दर्शन से मेरा कायाकल्प हो जायगा और तेरे भक्तों की नामावली में मुझ अधम का भी नाम लिख जायगा। प्राण-सर्वस्व, किवाड़ खोल दे और अपने विरह-पीड़ित पथिक को दर्शन दे।"

फिर आवाज़ आई—'नहीं, देर करने से तुम्हें रात भर बाहिर ही ठहरना होगा।'

इस वज्र-प्रहार से मेरा हृदय टूक २ हो गया और संज्ञा-रहित होकर धरती पर गिर पड़ा।

द्वार खोला गया। प्रेम देव ने मुझे उठा कण्ठ से लगा लिया और बोले, "तुम सरीखे अनन्य प्रेमियों के लिये, मुझे अपना द्वार आधी रात को भी खोलना पड़ता है। तुम्हीं मेरे अजेय 'प्रेम-दुर्ग' को जीत सकते हो!"

अकेली खड़ी क्या करूं?

संध्या हो गई है। कषायवस्त्र धारण किये यतिराज भगवान् मरीचिमाली अस्ताचल को प्रस्थान कर रहे हैं। दूर से भेड़ों की घंटियों का शब्द सुनाई पड़ता है। दिगम्बर आकाशने धेनु-रेणु का मलिन वस्त्र धारण कर लिया है। पूर्व में अकेले एक तारे का उदय हो आया है। पक्षियों की पाँतें की पाँतें उदार वृक्षों के अङ्क में शयन करने को जा रहीं हैं।

हा! मैं कब से इस जीर्ण पुल पर उनके आने की राह देख रही हूं! दिन भर मार्ग वालों से निर्लज्ज बन कर पूंछते पूंछते हार गई, पर उनका कुछ भी पता न चला। विरहाश्रु-बिन्दुओं से पात्र भर लिया, किन्तु वे चरण धोने को न मिले।

मैं दीन दुखिया, इस संसार में अकेली ही हूं। बचपन ही में मेरे माता पिता स्वर्ग को सिधार गये थे। खबर नहीं, कल रात को जब कि मैं मजूरी करते २ थक कर एक पेड़ के

नीचे सो गई, मुझे स्वप्न में किसके दर्शन हुये ! अहा ! उनका रूप-लावण्य ऐसा अपूर्व था, कि मैं बेचारी बालिका उन्हें देखने को दिन भर की टक लगाये बैठी हूं। कुछ न पूंछो, मैं उनके प्रेम में ऐसी फंस गई, कि आज दिन भर लोगों ने मुझे सब प्रकार का लोभ दिखा कर गांव में चलने को कहा, पर मुझे बिना उनके दर्शन के त्रिलोक की संपदा भी धूल की समान है।

सुना है, कि उनके दर्शन गुण-गान करने से होता है, पर मुझ मूर्खा को संगीत के ताल स्वर का कुछ भी ज्ञान नहीं ! मैं किसे पुकारूं और क्या कह कर बुलाऊं ? आत्मा कहती है कि वे चन्द्रोदय के समय अवश्य आवेंगे और मेरा पाणि-ग्रहण करेंगे। मैं भी अपनी अकिंचिनता, अज्ञानता तथा सरलता की पुष्पाञ्जलि उनके चरण कमलों पर अर्पित कर दूंगी।

लज्जा आती है, कि मैं उनसे क्या कहूंगी ? यह फूल माला उनके गले में कैसे पहिनाऊंगी ?

हे अज्ञात मनमोहन ! इस निर्जन और नीरव वन में अब मुझे भय लगता है। तुम्हारे बिना, तब तक मैं अकेली खड़ी क्या करूं ?

❧ ❧ ❧

प्रगाढ़-आलिङ्गन ।

ठीक नियत समय पर मालती निकुञ्ज में पहुंच गया हूं, क्योंकि अभी दो ही घड़ी रात गई होगी । पराग-लोलुप-भ्रमर विकसित कुसुम-कलियों पर गुञ्जार रहे हैं । मन्द पदन्यासिनी सुरभित समीर मेरे समीप आ कर धीरे २ संकेत के गीत गाने लगी । चन्द्ररश्मियां सुधा-घट लिये मेरा विरह-दग्ध-मलिन मुख धो कर मुसकराने लगीं। अगणित तारागण मित्र-मिलाप देखने को आकाश के झरोखों में हो झांकने लगे और चन्द्रवदनी सुख-शर्वरी ने भी अपना श्याम घूंघट-पट हटा लिया ।

हा ! प्राणाधार मित्र अभी तक न आया । नियत समय हो चुका था मैं ही विरहाकुल हो पहिले आ गया ? जो हो, वह छल छिद्र नहीं जानता है । अवश्य ही आकर-मुझे हृदय से लगावेगा ।

यह क्या, प्रिय मित्र आ पहुंचा और मैं विरह-विलाप की आहें ही भरता रहा ! न मैंने कोई आसन बिछा पाई, न हाथ में कुछ भेंट ही लेली । नंगा का नंगा ही रहा, पर क्या सोच, मेरा मित्र भी तो ऐसा ही है ।

आओ, प्यारे ! हाथ मिला लो । अहा ! तुम्हारे कर स्पर्श में मुझे शशि-निस्सरित-सुधा-रस का तथा मृग-मद-उसीर-मलयान्वित-नवनीत का अनुभव होता है ।

आओ, जीवन-प्राण ! इस कलुषित कठोर हृदय से लग जाओ ! तुम्हारे प्रगाढ़ आलिङ्गन से आत्मा पर का आवरण

हट गया। मेरा और तुम्हारा हृदय सट कर एक हो गया। अब खबर नहीं, कि तुम कौन और मैं कौन ?

प्रेम की प्रचण्ड ज्वाला जल उठी ! अज्ञान, मोह और द्वैतता जल कर भस्म हो गई। किन्तु, अब क्या ही शीतलता का संचार हो रहा है ! चार आंखें मिलने पर अमृत वर्षा होने लगी। खूब जल बरसा और मृत्यु कर्मगामी प्रवाह में बह कर लीन हो गई !

अहा हा ! आज 'हरि' प्यारे प्रेम को हृदय से लगा कर परमानन्द में तल्लीन हो रहा है !

प्रेम-प्रमाद।

ए परम प्यारे ! देख लिया खूब देख लिया। तेरी निष्ठुरता और मेरी सरसता। तेरी हंसी और मेरी खुशी। तेरा आना और मेरा मुझ से जाना। तेरा मुसकराना और मेरा रोना। वहां मान, तो यहां दान। वहां 'क्या, तो यहां 'क्यों' ? वहां 'नहीं' तो यहां 'सही'।

यदि तू मुझे जीवन-दान देगा, मैं उसकी उपेक्षा कर दूंगा। मेरे जीवन की बरसें किसी अभागे को प्रदान कर दे। पर मैं मरूंगा भी नहीं ! तू मेरे सामने बैठ जा और मैं तेरे मुख की ओर टक लगाये देखता रहूं। कब तक ? जब तक कि 'काल' का आत्यंतिक लय न हो जाय मैं कोई कर्म न करूंगा, क्योंकि मुझे अवकाश ही नहीं क्या करूं, तुझे हृदय से लगाकर मैंने अपने दोनों हाथ प्रेम की हथकड़ियों से बंधवा लिये। पैर तो मानो हैं ही नहीं ! बेचारी आंखें तेरी छवि निहारते २ प्रेमोन्मत्त हो

गई ! कानों से सुन नहीं पड़ता, और मुख से बोलना तो दूर रहा, हंस नहीं सकता। बस, खूब दशा की ! मित्र, तूने खूब दशा की !

क्या यह मेरे सामने राजा खड़ा है ? नहीं तो बेचारा काम कांचन का दास है। ठीक है सभ्यता की जवनिका में नैतिक वञ्चकता, मार्मिक लोलुपता, भौतिक-विह्वत्ता और सामयिक-स्वार्थ-परता के क्या ही चित्र अङ्कित किये गये हैं ! अच्छा पागल बनाया और मूल्य लेकर विषपान करा दिया। भारत का पुराना संन्यास अवधूतों का नंगापन आज के दिन मसखरी कराता हुआ परिचय के राज्य में आलोकित हो गया !

अरे क्या ही तमाशा, जब मैंने तुझे बुलाया, लोगों ने नाक भौं सिकोड़ी ! मैंने भी उनकी अप्रसन्नता पैर के नीचे दबाकर, उन्हें तो नहीं, किन्तु उनकी सहचरी ईर्ष्या को पर्याप्त दण्ड दे दिया। इससे पूंछा, उससे पूँछा, पर सन्तोषजनक उत्तर कहीं न पाया। जाने दो, यहां भी क्या परवाह !!

अय मेरे प्राण प्रिय निर्दयी, सावधान, मेरे निहत हृदय की ओर मत देखना। "घाव मेरे हैं और आंसू भी मेरे" उनकी ओर देखने का अधिकार केवल मुझे ही है। तू तो मेरे अर्धो-न्मीलित नेत्रों और स्मित मुख की ओर देख सकता है। क्या तू ने मुझे पहिचान लिया, क्योंकि मुझे पहिचान लेना सहज नहीं। मैं तेरा पागल और तू मेरा प्रेम। जोड़ी भी क्या खूब ! अहाहा !! अहाहा !!! 'हरि' प्रेम का पागल है ! प्रेम-प्रमाद में मतवाला है !

❀ ❀ ❀

(२)

प्राकृतिक-आनन्द ।

स्फुरत्स्फारज्योत्स्ना धवलित तले क्कापि पुलिने,
सुखासीनाः शान्तध्वनिषु रजनीषु द्युसरितः ।
भवाभोगोद्विग्नाः शिव शिव शिवेत्यार्त वचसा,
कदास्यामानन्दोद्गत बहुल बाष्प प्लुत दृशा ॥

—भर्तृहरि ।

"To me the meanest Flower that blows can give.
Thoughts that do often lie too deep for tears."

—*W. Wordsworth*

प्राकृतिक आनन्द का जन्म।

अय मेरे प्रियतम, मैं जानता हूं, कि जो प्रातः काल लज्जावनता रक्तवर्णाङ्गा, स्वरूप-मुग्धा एवं सुस्मितवदना प्राची दिशा हरित दूर्वा के सुचारु-पात्र में ओस बिन्दु रूपी मुक्ता लिये, नीलाम्बरधारी नभो-मण्डल से भेंट करने को आती है, कवियों की शृंगाररसमयी प्रतिभा का जन्म यहीं से होता है।

जब बाल रवि की सुकुमार किरण कमल-कपोल का चुम्बन करके जल-तरङ्ग में जाल प्रसारित कर देती है, तब रस-लोलुप भ्रमरावलि गुञ्जारती हुई यह सूचना दे जाती है, कि किशोरा-वस्था का लावण्य इन्हीं परिरम्भित कंज-कलिकाओं से विक-सित होता है।

जब विविध-सुमन-सौरभ-वाहिनी समीर ललितलता का मंजुलाङ्ग परसि कर तथा लहलही पत्तियों के साथ हास्य विनोद करती हुई मेरे नेत्रों के पलक पर ठंडी सांस लेकर चली जाती है, तब मुझे यह ज्ञात हो जाता है, कि निद्रा का प्रथम जन्म यहीं से हुआ है।

जब मैं मत्त गयन्द-गामिनी नदी के निकूल पर सन्ध्या समय खड़ा होकर विटप-शाखाओं पर चुहचुहाते हुये पक्षियों को, उछलते हुये उन्नत-ग्रीव हिरणों को रंभाती हुई धेनुओं को और घंटियां बजाती हुई भेड़ों को देखता हूं, तब मेरा हृदय आनन्द से प्रफुल्लित होकर कह उठता है, कि उमङ्ग और उत्सव का लालन पालन यहीं हुआ है।

जब पूर्ण-सुधाकर की स्वर्ण-किरण कुमोदिनी को हृदय से लगाये हुये जल-केलि करती है, जब निर्जन कानन में शरद्-चंद्रिका धवल-परिधान धारण किये प्रकृति-सहयोगिनी के साथ परिरमण करती है, मैं जान लेता हूं, कि सौन्दर्य का जन्म इसी स्थल पर हुआ है।

हे प्यारे प्रकृति-रमण, जब मैं प्राकृतिक दृश्य देख कर आनन्द में निमग्न हो जाता हूं, मेरे आंखों से आंसुओं की झड़ी लग जाती है और मैं अधीर होकर कह उठता हूं कि तेरे प्रेम का जन्म इन्हीं आंसुओं से हुआ है।

तेरा संदेशा ।

मुझे बुलाता है, निरन्तर बुलाता है।

जब मैं अति विशद निर्जन आरण्य में कलरव-कल-कलित सुललित झरनों का सुगति-विन्यास देखता हूं, मन्दस्रोत स्वती-सरित-तट-तरु-शाखा-विहरित-कल कण्ठी-कोकिल-कुहूक-ध्वनि सुनता हूं, प्रभात-ओस-कण-झलकित-हरित-तृणाच्छादित-प्रकृति-परिष्कृत-बहु-वन-स्पति-सुगन्धित-सुखद-भूमि पर लेटता हूं, तथा नाना-विहँग पूर्ण-सुफलित-वृक्षावृत- गिरि-सुवर्ण- श्रृंग-शुभ्र- स्फुटिकोपम-शिलासन पर बैठ कर प्रकृति-छटा-दर्शनोन्मत्त-अर्द्धोन्मीलित-साश्रु नयन द्वारा अस्तप्राय तप्तकाञ्चन वर्ण रवि-मण्डल-भव कमनीय कान्ति की ओर निहारता हूं, तब स्वभाव-सुन्दर लज्जा

वनत अप्रकट-सुमन-सौरभ-रसिक-पवन आकर, श्रवण-पुट-द्वारा तेरा विरहोत्कण्ठित प्रिय-सन्देश सुना जाता है।

प्यारे, तू नित्य ही मेरे द्वार पर सघन-घन-तमाच्छन्न कृष्ण-वसन-लसित-निशि-समय सुजन-मन-मोहिनी, रसिक-रस-सोहिनी वेणु बजाता है; माधवी-मल्लिका-मरंद-लोलुप-मलिन्द-गुञ्जार-समुल्लसित, नवरस-पूरित, सुप्रेम-प्रतिभा-समुदित-कवि-हृदय-द्वारा स्वच्छन्द-आनन्द कन्द-संदेश भेजता है; और कभी २ विरह-दग्ध-उर-निस्सरित-प्रेमाश्रुवर्षण वा संयोग-गत-प्रगाढ़ालिंगन-रोमहर्षण में अपनी सुप्रीति-मय झलक दिखा जाता है।

अय मेरे प्यारे प्रेम, जैसे काष्ठ में अग्नि, रात्रि में दिवस एवं जल में तरङ्ग व्याप्त रहती है, उसी प्रकार इस क्षणभङ्गुर जीवन के प्रत्येकांश में तेरा सुखमुख, परमानन्द-दायक-दिव्य-सन्देश परिपूर्ण रहता है।

प्रदीप-गृह।

स अनन्त एवं अगाध संसार-सागर में, मुझे अपनी जीवन-नौका खेते खेते युग के युग बीत गये। छद्म वेष-धारी कपटी मित्रों की समान कई चट्टानों से इसे टकराना पड़ा, पर इसकी तली ऐसी पक्की कीलों और बंधनों से जकड़ी हुई है, कि न कोई छिद्र हुआ और न डूबी ही!
कभी कभी रमणीक तथा नेत्र-रञ्जक बन्दर भी मिल जाता,

पर लंगर डालने की असुविधा के कारण वहाँ वास करना दुष्कर अपि च असम्भव था।

बहुत दिनों अनशन व्रत धारण करके तथा कई दिन बिना जलपान के ही काटे। इन्द्रियां शिथिल पड़ गईं और अंग प्रत्यङ्ग जर्जरित हो गये। तूफान बड़े वेग से आये और तरङ्गों के आघात प्रत्याघात से यह जीर्ण नौका उलट पुलट हो गई। शिक्षा-प्रदर्शक-यंत्र की सुई टूट जाने से, निर्जीव अनुकरण करने वाली समाज की नाईं, अथवा अंध-श्रद्धा पर चलती हुई धर्म-रूढ़ि की समान या मनमुखी स्वतंत्र स्त्री इव बिना ही पते के यह नौका अविरल गति से हम लोगों की अवहेलना करती हुई अपार समुद्र में जाने लगी।

गत रात्रि को, मल्लाह मोह-निद्रा में निश्चेष्ट पड़े सो रहे थे। अकेला मैं ही छत पर खड़ा हाय सांसें भर रहा था कि क्या मुझे कभी कोई शान्ति-निकेतन मिलेगा ही नहीं ?

अहा ! एकाएक मेरी दृष्टि दूर के एक प्रकाश पर पड़ी और जब ठीक आधी रात को मेरी नौका यहां पहुंची, तो ज्ञात हुआ कि यह प्रकाश 'प्रदीप-गृह' का है।

यहां प्रेम की ज्योति जलती है और भूले भटके तथा मरे मिटे यहाँ ही ठिकाने लगते हैं। मेरा हृदय सुधाकर की सुधा-वर्षिणी-रश्मि-राशि के साथ नाचने लगा और मैंने पूर्ण स्वतन्त्रता का एक गीत गाया, जिसका भाव यह है :—

"हे प्रभो ! इस निःसार संसार-सागर में हमी नीचाति नीच भूले भटकों के लिये, तुझे अपनी 'प्रेम-मयी' सत्ता स्थापित करनी पड़ी ! हे नाथ, तू ही हमारा सर्वस्व एवं प्रदीप-गृह है !"

❧ ❧ ❧

ऊषा-काल ।
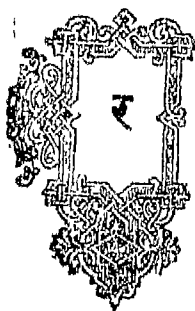
रजनी के तीन प्रहर चले गये। चौथे का प्रवेश हुआ है। प्राची-दिशा नवोढ़ा-नायिका की नाईं लज्जावनता अरुण-वसन धारण किये सुमधुर हास्य करती काम-निकेतन में मत्त-गयन्द-गति से चली आ रही है। कृतज्ञता के कारण नर-योनि से बढ़ कर विटपवासी पक्षी गुरुचर्या द्वारा परापवादी स्वात्माभिमानियों एवं स्वार्थ-पर कृतघ्न चोरों की सूचना देते हुए, सतत-प्रिय-वादी तथा स्वान्नलक्ष्मी धनी लोगों को सरलता रूपी निद्रा से सचेत कर रहे हैं। निःश्रेय धर्म को भी तिलाञ्जलि देते हुये, वञ्चकता और आडम्बर के मलिन रंग में रंगे हुये संसार की दृष्टि में महात्मा बनने की इच्छा रखते हुये अनेक साधु-संत जागृति-स्वप्न-सुषुप्ति से परे परमात्मा को प्रभाती गा कर जगा रहे हैं।

देखो, उस नव-प्रसूता धेनु का वत्स भी दूध पीने को रंभा रहा है, पर लोभी ग्वाल उसे मां के पास नहीं छोड़ता है।

अनुद्योगी पति तो आलस्यवश खाट पर ही आंखें मीड़ता करवट ले रहा है, पर वह बेचारी गृहिणी बालक को जैसे तैसे सुला कर गृह-परिष्कृत करने लगी है। कहीं मंथाना का घरर घरर शब्द सुनाई पड़ता है, तो कहीं पीसने की चक्की चल रही है।

सभ्य-समाज का अनादर-पात्र अथवा गँवार किसान सच्चे परोपकारी बैलों को लिये, सिर पर हल रक्खे, बाबुओं

और धुरन्धर लेखकों का पेट भरने के लिये अपने खेत पर जा पहुंचा है ।

मैं भी, उठ कर अपने फटे कंबल पर बैठ गया हूं। मानसमंदिर में अपने इष्टदेव का साङ्गोपाङ्ग पूजन कर लिया और मुख से ये शब्द निकल पड़े :—

"धन्य इस सु-समय को, जो तेरे पुनीत-दर्शन हुये! हे प्राणप्यारे, मेरी यही हार्दिक अभ्यर्थना है कि तेरे अभिमुख सदा जीवन-प्रभात ही बना रहे!"

मौन-व्रत ।

ब कि निष्प्रभा रजनी की प्रौढ़ावस्था प्राप्त हुई, छोटे बड़े तारे निस्तब्धरूप से अपनी विप्रलब्धा स्वामिनी की विरह-पीर में योग देने लगे, वायु समस्त जगत से उदासीन होकर किसी गिरि-गह्वर में अवसन्न हो गई, और जब प्रसुप्त-जल राशि में प्रतिबिम्बित अग्निशृंग नत मस्तक हो गया तब वह कौन व्यक्ति एकान्त-वास करता हुआ उस नीरव वन में खड़ा था जिसकी सारी शक्तियां उसके विशाल हृदय में केन्द्रस्थ हो रही थीं और जिसके साश्रु-नेत्र औचित्य एवं शान्ति अभिव्यक्त कर रहे थे ?

जब कि बालार्क के सम्पर्क से गगनाञ्चल पीत-कषाय वस्त्र धारण किये तिमिराज्ञान को दूर करता हुआ, तथा जगत में पुण्य-प्रसार का पताका फहराता हुआ प्रकृति-भवानी के

ललित-ललाट में सौभाग्य-सिन्दूर दे रहा था, सरोवर के गर्भजात पद्म-पल्लव उदारता प्रकट करते हुये मन्द स्मिति-पूर्ण-प्रभा को विकसित कर रहे थे और जब काव्य का शान्त रसात्मक उदय शीतल-समीर में एवं उड्डीयमान बक-पंक्ति में हो रहा था, तब वह कौन सा मौन-व्रत-धारी योगी आसन मारे बैठा था, जिसके द्वैत-वाक्य हलचल होकर विचार-साम्राज्य में पराजित से प्रतीत होते थे और जिसकी वाणी आत्मानन्द के अगाध-सागर में डूब जाने से अपने अस्तित्व को भूल ही गई थी ?

निःसन्देह वह मूक पुरुष, हे नाथ ! तेरा अनन्य उपासक होगा। तेरे छवि-स्रोत के प्रवाह में उसके ऐहिक-विचार बह गये होंगे। उसका कण्ठ तेरी मधुर मुसक्यान और कटाक्ष पात के अमोघ बाणों से अवरुद्ध हो गया होगा। उसकी मौखिक-शक्ति तेरे कर कमल के स्पर्श-ज्ञान में विलीन हो गई होगी, और तेरे मिलन-सुख में अङ्ग-चाञ्चल्य निहत हो जाने पर मूकत्व और शान्ति प्रकाशित हो रही होगी, क्योंकि, हे प्रेम-प्यारे ! तेरे साक्षात्कार में बेचारे प्रेमी की यही दशा होती है कि उसे "मूक-बधिर-अन्ध-जड़-उन्मत्त एवं मूढ़" की पदवी प्राप्त होती है !

दृष्टि-सौन्दर्य

हे सर्वाङ्ग सुन्दर ! यह तेरे सौन्दर्य का ही प्रसार है, जो निरानंद आकाश में बाल-मुसक्यान इव बालारुण-रवि-रश्मि-सुशोभित प्रभात का जन्म होता है, मधु-मयी कंज-कलिका प्रफुल्लित होकर विहरित भ्रमरावली को अलोल-कल-कपोल-चुम्बन देती है, सुरभित

समीर नव-वल्लि-ललित-मंजुलाङ्ग परसि परसि बसन्त-कोकि-ल-कूंजित-निकुंज को मद-विह्वल करती हुई रसिक-हृदय में संचार करती है और पर्वतीय निर्झर द्रुत विलंबित गति से बहते हुए हरित-तृण-स्वलंकृत-भूमि का मुख धो रहे हैं।

सुकुमार मृगशावक चपल चाल से उछलता थिरकता पलायन कर रहा है, कल्पना-कलित सुललित विहङ्ग-संघ तरु शाखाओं पर सुरीला गायन कर रहा है, लाल लाल कर पल्लव वल्लव-लसित सुमन्द हास्य किलकित शिशु पालने में खेलता हुआ माता के अनिमेष नेत्रों को आनन्द दे रहा है, और अनन्य प्रेमियों के पारस्परिक आलिंगन में अवर्णनीय सुख-सुधा-वृष्टि हो रही है।

हे प्यारे मन-मोहन, तू सौन्दर्य-सागर है। तूने मुझ सरी-खी नीरस मरुभूमि में अपने हृदय-सरोवर से एक बूंद छोड़ दी, और यही कारण है, कि आज मैं अपनी क्षुद्र अहंता का सर्वतोभाव त्याग करके समस्त प्रकृति में सौन्दर्य-आनन्द लाभ कर रहा हूं। मैंने प्रत्येक वस्तु में अपने आदर्श की तुलना कर ली। अब, जहां देखता हूं, तहां तेरी दिव्य सुन्दरता की झलक ही दीख पड़ती है। धन्य इस दृष्टि-सौन्दर्य को, जो महा कवियों के सरस हृदय से निरन्तर प्रवाहित हो रहा है!

* * *

वियोग-विनोद।

जब निरानन्द गगन-मण्डल में अगणित तारागणों का उदय होता है और वे विरह-पीर से आँखें डबडबाते हुये जुगजुगाते हैं, तब रसोन्मत्त-कवि सरोवर में विकसित कुमोदिनी के साथ अन्योन्याश्रय उपमा देकर अपना मनोरञ्जन करता है।

जब शिथिलाङ्गी विप्र-लब्धा नदी तरङ्गों की आहें भरती हुई मंद मंद गमन करती है, तब उस के वियोग-विलाप पर ध्यान न देता हुआ तीर पर खड़ा हुआ कामी मनुष्य, उसकी गति पर, अपनी मद-विह्वलांगा प्रणयिनी की उपमा देकर मनोविनोद करता है।

जब विरहानल-पीड़ित ग्रीष्म-वात पर्वतों की कठोर छाती पर सिर पीटती हुई और आकाश में चक्कर खाती हुई हताश पृथ्वी पर मूर्छित गिर पड़ती है, तब बालक पतंगें उड़ाते हुए आल्हादित होते हैं।

जब अधीर सागर की लहरें तट के वक्षःस्थल को पीड़ित एवं नादित करती हैं और विरह-दग्ध-जल से जीव-जन्तु क्रन्दन करने लगते हैं, तब जहाज पर विहार करने वाला मल्लाह तरंगों के आघात प्रत्याघात को मृदंग की थाप समझ कर राग आलाप उठता है।

इसी प्रकार मेरे प्रत्येक क्षण तेरे वियोग से परिपीड़ित हो रहे हैं। मेरा जीवन-प्रवाह तेरे मिलन के आशा-रूपी प्रदेश में हो बह रहा है और इन विरहाश्रुओं से जगत के प्रत्येक

कार्य प्लावित हो रहे हैं। किन्तु आश्चर्य है, कि मुझ चिर-वियोगी के दग्ध-हृदय पर लोगों ने विनोद-भवन निर्मित कर रक्खा है।

※ ※ ※

ईश्वर कहां मिलेगा?

रे मूर्ख, तू ईश्वर को कहां ढूंढ़ता फिरता है? राज-प्रासाद के सुसज्जित मंदिर में, रत्न-जटित-स्वर्ण-सिंहासन पर, तथा सभ्य नगर के चमक दमक वाले कृत्रिम भवन में उसका निवास नहीं। रूप रंग बनाने से, कुलीनता और सुयश की पताका उड़ाने से, तत्वज्ञान झाड़ने से या वाद विवाद करने से उसके दर्शन न होंगे। ध्यान और समाधि से अथवा षोड़सोपचार पूजन से उसकी प्राप्ति न होगी।

वह तो, सघन वन की लहलही पत्तियों के साथ खेलता होगा, वसन्त-वायु के स्वर में गाता होगा, गज-गामिनी नदी की कलोलमयी तरल तरंग में नृत्य करता होगा, इन्द्र धनुष के सप्त-वर्णीय आकाशवृक्ष-गगन-वाटिका में केलि करता होगा, विद्युत् के आभूषण तथा स्वेत-पीत-नीरद के परिधान धारण किये प्रकृति के राज्य-सिंहासन पर विराजमान होगा और पहाड़ियों तथा घाटियों पर पक्षिसंघ के मधुर शब्द के साथ अपनी बांसुरी का स्वर मिलाता होगा।

वह निष्कपट सरल हृदय में, बाल-हास्य में, प्रेम-चितवन में, करुणा-पूर्ण आह्वान में, तल्लीन गान की तान में, परिचुम्बित

मुख-माधुर्य में, वियोगी के आंसुओं में, कर स्पर्श की शीतलता में, दीन की शोकाकुल आह में, तथा प्रियजनों के आलिंगन में पवित्र निवास करता होगा।

अपने हृदय-कपाट खोल दे और उसके भीतर पतित एवं तिरस्कृत जनता का प्रवेश होने दे। अपने अन्तरङ्ग मान-सरोवर को विश्व-प्रेम से इतना स्वच्छ कर ले कि उसमें प्रत्येक व्यक्ति का प्रतिबिम्ब पड़ने लगे।

इस अभेद-दृष्टि से, तुझे ईश्वरान्वेषण द्वार २ न करना होगा, किन्तु उसका दर्शन सर्वत्र ही मिलेगा।

(३)

जीवन-साफल्य एवं कर्तव्य-परायणता

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥

Not once beat "Praise be Thine!
"I see the whole design,
"I, who saw power, see now love perfect too:
"Perfect I call Thy plan:
"Thanks that I was a man!
"Maker, remake, complete,—I trust what
Thou shalt do!"

—*Robert Browning.*

❧ ❧ ❧

गुरु और चेला।

चेला—हे गुरो! क्या मनुष्य की व्यक्तिता संसार के सम्बन्ध से निराली है, अथवा सांसारिक बन्धनों से परिमित है?

गुरु—हां बच्चे, तेरे प्रश्न के दोनों ही प्रकार के उत्तर हो सकते हैं। मनुष्य की व्यक्तिता संसार के सम्बन्ध से निराली यों है, कि उस के आत्म-भाव शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर के और आगे निकल जाते हैं। उस के विचार क्रिया-परायण हो कर भी स्वसंवेद्य हैं और उसकी आत्मता स्वयंतृप्त है, किन्तु उस का प्रथकत्व संसार से विरोधात्मक नहीं, वरन् वह संसार के नित्य-सौन्दर्य के आदर्श से अपने आदर्श की तुलना करता हुआ सांसारिक बन्धनों से परिमित भी है।

चेला—महाराज, क्या बिना संसार-त्याग के ईश्वर-प्राप्ति नहीं हो सकती है?

गुरु—संसार-त्याग करना दुष्कर बथा असंभव है। आप संसार का न बन के संसार को अपना बना लेना ही ईश्वर-प्राप्ति का मुख्य द्वार है, अर्थात् साक्षित्य-रूप से सांसारिक हो जाना ही संसार-त्याग कहा जा सकता है।

चेला—तो क्या वासना-क्षय न करना होगा?

गुरु—नहीं, वासना-क्षय नहीं, वासना-योग करना होगा। मन को आत्मा के अनुकूल बनाने में ही परम श्रेय है।

चेला—महाराज, आत्म-साक्षात्कार करने में गुरु की कहाँ तक आवश्यकता है ?

गुरु—जब तक कि मनोविकार दूर न हो जावें। आत्म-बल प्राप्त हो जाने पर अपनी आत्मा ही परम गुरु हो जाती है।

चेला—क्या आत्म-दर्शन हो जाने पर मनुष्य में अद्भुत कलाओं और चमत्कारों का उदय हो जाता है ?

गुरु—इन बातों का प्राप्त हो जाना नीच कोटि के अन्तर गत है, क्यों कि इन में आत्म-तुष्टि नहीं होती। आत्म-दर्शन में उस अकथनीय परमानन्द का लाभ होता है, कि जिसे पाकर मनुष्य को किसी वस्तु के पाने की इच्छा ही नहीं रहती।

चेला—गुरुवर ! उस परमानन्द पाने का सब से सुगम मार्ग कौन सा है ?

गुरु—प्रिय वत्स ! ऐसा भगवत्प्रेम ही है, क्यों कि इस साधन में उपासक की आत्मानुकूलता परमकाष्ठा को पहुँच जाती है और उस प्रेम की उत्तरोत्तर वृद्धि प्रेम के अर्थ होती चली जाती है।

मैं कौन हूं।

कौन रूपी प्रश्न-सागर के एक तट पर जब मैं खड़ा हूं, तब मैं अपने आदर्श को बृम्ह से लेकर कृमि कीट तक व्याप्त देखता हूं। मैं अपनी व्यक्तित्व को जगत की अनन्तता में लय कर देता हूं। मैं अपने अहंज्ञानका क्षुद्र परमाणु में चरम सीमान्त अनुभव प्राप्त करता हूं।

परन्तु जब मैं उस पार खड़ा होकर दृष्टि-प्रसार करता हूं तब तो मैं समस्त संसार से संन्यस्त हो, एकान्तवासी वियोगी बन जाता हूं। इस विलगता में शुद्ध-अहंकार का अभ्युदय होता है, किन्तु द्वेषभूतदर्प का चूर्ण हो जाता है। इस दशा में द्वैतता का अत्यन्ताभाव होता है। यह 'विचार' स्वरूप में तो अत्यल्प होता है, किन्तु भिन्नता एवं सादित्व के कारण परम विशाल है।

इस भिन्न-अभिन्न अथवा संयोग-वियोग-परिमित-महा सागर के बीच में एक सुगम-सेतु बना हुआ है, जो इन दोनों तटों को योजित कर देता है। इसे 'प्रेम-पन्थ' कहते हैं। यह मृत्यु को अपने रूप में परिणत कर लेता है और प्रकृति को सजीवता देता हुआ, निष्काम एवं विशुद्ध आशा के देशान्तर्गत नित्य-प्रह में सुमंद हासिनी मुक्ति विलासिनी 'प्रेम-प्रेयसी' से मिला देता है।

यहां सम्बन्ध तो होता है, किन्तु स्वतंत्र होने के कारण प्रतिबन्धक नहीं है, कारण कि जो सच्चा स्वतंत्र है, उसके निसर्ग वाले भी स्वतंत्र होते हैं। इसी प्रेम-पूर्ण सम्बन्ध में अद्वैतानन्द अभिव्यक्त होता है। इस निदिध्यास एवं साक्षा-

स्कार से मानसिक शैथिल्य नितान्त नष्ट हो जाता है। यहीं पर व्यष्टि-समष्टि के कर्त्तव्याकर्त्तव्य में प्रेय तथा श्रेय सम-न्वित हो जाते हैं।

* * *

फूल खिल जाने दो ?
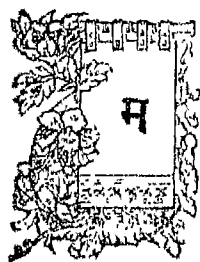
हाशय! अभी इस फूल को मत तोड़ना। वह अत्यन्त कोमल कली है। उसकी सुकु-मारता और लावण्य देख कर, किस मरंद लोलुप भ्रमर का मन लुब्ध नहीं हो जाता है, किन्तु अभी उसके स्पर्श में कोई विशेष लाभ नहीं।

जब तक कि उसका प्रक्षिप्त चित्त एक वृत्त नहीं हो गया है, उसके विचार केन्द्रस्थ नहीं हो गये हैं, उसका सौन्दर्य त्यागी नहीं हो गया और उसका अभिमान नष्ट नहीं हो गया है, तब तक उसका माधुर्य तथा-रस प्राचुर्य विकाश को प्राप्त न हो सकेगा।

जिस दिन यह संपुटित कली विकचता को प्राप्त हो जायगी, जिस घड़ी इसे सौन्दर्य-प्रसार का आदेश मिल जायगा, जिस समय इसकी साधनायें सिद्ध हो जांयगी, जब इसके आन्तरिक अनुभवों की परिसमाप्ति हो जायगी, तब इसका विमल-परिमल दिगन्तों को सुवासित कर देगा, अदया अदय पर विचार न करने वाला पवन इसका सुधारस पान करके अपने पापों का प्रायश्चित कर लेगा। देश-देशान्तरों के द्वीप-प्रद्वीपों के मुमुक्षु-चंचरीक इसके चरणों के पास बैठकर उपदेशामृत ग्रहण करेंगे। इसका महत्व प्रसिद्ध करने में, इस

की सिद्धि प्रख्यात करने में किसी को जगत में घोषणा न देनी होगी ।

हे रसिकजनो ! तुम्हारी आशा विफल न जायगी । किन्तु अभी समय नहीं आया है । धैर्य धारण करो, और इस फूल के खिलने के समय की प्रतीक्षा करते रहो । शीघ्र ही, वह सु-अवसर आयगा, जब तुम्हारा मलिन वासना-ग्रह, तुम्हारा अभिलषित-सुख इस कुसुम-विकाश के पराग से सुगन्धित हो जायगा, और तुम को इसके स्पर्श से परमानन्द की प्राप्ति होगी ।

सागर-तट ।

बालको ! दूर खेलो, दूर खेलो, क्या तुमने कभी समुद्र के ज्वार को बढ़ते हुये नहीं देखा है ? आज, उत्तर की ओर से तूफान आने वाला है । दूर से आती हुई नौकायें तरल-तरंगों के आघात-प्रत्याघात से जल-केलि करने लगी हैं, और बड़े २ मत्स्य अकुलाय मान होकर क्रन्दन कर रहे हैं । मछुये लोग अपने २ जाल छोड़कर किनारे पर भाग आये । धूम्र वर्ण आकाश में अनेक पक्षी चक्र बांध २ कर उड़ने लगे हैं । अहो ! सागर के चारों ओर कैसा कोलाहल हो रहा है !

बालको, क्या तुम ने अविरत तरङ्गावलि से प्रताड़ित किनारा अपनी क्रीड़ा ही के लिये उपयुक्त कर रक्खा था ? क्या तुम यह न जानते थे, कि इस अपार महासागर के

गर्भ में जीवन-मरण सम्बन्धी अनेक अप्रकट रहस्य भरे पड़े हैं ?

देखो दूरदर्शी प्रबुद्ध लोगों ने पहिले से ही जलपोत बना लिये, पर तुमने दिन भर कौड़ियां और घोंघियां बटोरने में अपना अमूल्य समय बिताया ! आज, प्रमत्त-महासागर तुम्हारे बालुका-निर्मित खिलौने अपनी निर्दय हिलोर में बहा ले जायगा और रोते ही रह जाओगे ।

भागो, भागो ! समुद्र प्रबल वेग से बढ़ आया । आकाश के शून्य वक्षःस्थल को प्रगल्भ-तरंगे ताड़ित करने लगीं और वायु के साथ जल का द्वंद् युद्ध होने लगा ।

बालको, तुम असावधानी से खेलते ही रह गये और समुद्र की लहरें तुम्हारे कोमल-अंग क्षार-जल से धोने लगीं हाय ! इस कराल-काल-सागरने तुम सुकुमार सुन्दर बालकोंको भी अव्याहत न छोड़ा !

विरक्त और गृहस्थ ।

विरक्त—क्यों बाबू ! संसारकी झंझटोंमें क्यों फंसे हो । गार्हस्थ्य जीवन दुखमय है और इसमें रहते हुये तुम्हें कदापि ईश्वर के दर्शन न हो सकेंगे ।

गृहस्थ—बाबा जी, ऐसा मत कहो । ईश्वर-प्राप्ति के अर्थ क्या प्रवृत्ति और क्या निवृत्ति ? क्या गार्हस्थ्य और क्या संन्यास ? हम चाहे जिस स्थिति में रहें, किन्तु हमको आत्म-बलसे रहित न होना चाहिये । तुम्हारी समझमें स्त्री पुत्रादि जो ईश्वरोपासना में बाधक हैं मैं इसे कदापि

नहीं मान सकता। जिस गृह में पति-पत्नी धार्मिक सूत्रसे बंध गये हैं, जहां, 'दाम्पत्य प्रेम' धर्म और साम्य का अनुगामी है, जहां शृंगार रस, सहृदयता, ह्री और निष्काम कर्मण्यता के आलोक में प्रकाशित हो रहा है, जहां कौटुम्बिक जन पारस्परिक शान्तिमयी सहानुभूति द्वारा अपनी आत्माओं का विकाश विश्व भर में कर रहे हैं, और जहां नित्य ही आत्म-त्याग के उदाहरण दिये जाते हैं, क्या वह गार्हस्थ्य-जीवन हेय समझा जा सकता है? क्या' उस गृहस्थ के पुत्र कलत्रादि बन्धन कहे जा सकते हैं? कदापि नहीं।

विरक्त—बाबू, यह तो ठीक है, पर यह तो बतलाइये, कि क्या बिना 'त्याग' के मुक्ति प्राप्त हो सकती है?

गृहस्थ—बाबा जी, क्यों नहीं? त्याग का यह अर्थ नहीं है, कि हम अपने घर की दीवालें छोड़ कर वन में वास करने लगें! दीवालों के बीच में रहते हुये भी उनमें कैद न होना अर्थात् उनमें 'ममत्व' न लगाना ही सच्चा त्याग है। शरीर-त्याग न करके शरीराधिपति बन जाना ही सच्चा दम है। प्रेम के अर्थ सर्वस्व दान कर देने पर भी आत्म-समर्पण करने की तृष्णा को योग देना ही सन्तोष है और स्वार्थ-त्याग करना ही सच्चा संन्यास है।

विरक्त—बाबू! सत्य है सत्य है। यदि आपके ऐसे विचार हैं, तो आप अपने गार्हस्थ्य जीवन को अवश्य सफल कर सकेंगे, और आपके कुटुम्बी जन एक दूसरे की आत्म-स्वतंत्रता में उत्तरोत्तर योग देते रहेंगे। धन्य इस गार्हस्थ्य-आश्रम को!

* * *

हाट की बाट।

दिवालोक निस्तब्ध और अस्पष्ट प्रतीत होता है। रात भर पानी बरसने से पक्षीगण वृक्षों पर अब भी नीड़ाश्रित हो रहे हैं। सूर्य का मन्द २ प्रकाश पत्तियों पर नाचती हुई ओस की बूंदों पर पड़ रहा है। मार्ग में कीचड़ मच जाने से मृग-शावक के सुकुमार पैर फंस जाते हैं, पर वह क्या ही लाघवता से उछल कर हरी २ दूब पर चौकड़ी भरने लगता है। सामने की पहाड़ी पर भेड़ों की घंटियों की घनघनाहट सुनाई पड़ती है, और इस गड़रिया की बांसुरी के स्वर वायु में प्रतिनादित हो रहे हैं।

इतने में कुछ ग्रामीण मनुष्य परस्पर हँस २ कर बातें करते हुये दिखाई दिये। मैंने उनसे पूछा, 'कहो भाई, ऐसे कष्टपूर्ण अगम्य मार्ग पर हो कहां झपटते जाते हो?' उन्होंने हंसकर, किन्तु बड़ी ही सरलता से कहा, 'हम लोग हाट को जा रहे हैं। क्या तुम नहीं चलते?' मैंने कहा, 'अवश्य' मेरे पास पैसे नहीं हैं, कृपा कर मुझे उधार दे देना।' इस पर उन्होंने कुछ उत्तर न दिया और सिर हिलाते हुये चले गये।

अब तो, सैकड़ों नर नारियों के झुंड उसी पंक-ग्रस्त मार्ग में आने जाने लगे। हाट से लौटे हुये प्रत्येक मनुष्य के मुख पर आश्चर्य और गंभीरता प्रकट होती थी। सब लोग चुप चाप हाट में जा रहे थे, मैंने हाट देखने की इच्छा से प्रायः सब लोगों से पैसे मांगे, पर किसी भले आदमी ने इच्छा पूरी की! यह भी सुना गया, कि उधार दामों से सौदा भी नहीं ली!

सन्ध्या होने लगी। चारों ओर अँधेरा छा गया। हाट वाले सब ही निकल गये। मैं पछताने लगा, कि यहां मैं किस लिये आया और क्या किया? हाय, न हाट का रहा न बाट का!

हताश हो उस विजन मार्ग से लौटने लगा। थोड़ी दूर गया था कि मार्ग की एक ओर एक व्योपारी बैठा मिला। उसने मुझ से कुछ सौदा लेने को पूंछा। मैंने अपना फटा पुराना वस्त्र उतार कर उसके आगे रख दिया और बड़ी नम्रता से कहा, 'भाई, इस वस्त्र को लेकर मुझे अपनी पिटारी में से कोई तुच्छ वस्तु दे दो'।

उसने एक बहुमूल्य अँगूठी निकाल कर मुझे सौंप दी और बोला, 'लो, इस अंगूठी में 'प्रेम-मणि' जड़ा हुआ है। इसे पहिन कर, तुम्हें हाट में न जाना पड़ेगा, क्योंकि इसे मोल लेकर, तुमने हाट की सारी सौदा खरीद ली!'

स्वार्थ का तिरस्कार।

सृष्टि-विकाश अथवा प्रत्येक दृग्गोचर वस्तु के लक्ष्य के अनुसार सुख-प्राप्ति ही अंतिम-फल माना गया है। यह सुख नित्यानित्य अर्थात् विषय-सुख एवं आत्म-सुख दो भेदों में विभक्त है। चाहे प्राप्त न हो सके, किन्तु इसका जन्म व्यष्टि-समष्टि वा पिंड-ब्रह्माण्ड के संयोग से होता है। इसी कारण मनुष्य समाज के बिना और समाज मनुष्य के बिना जीवित नहीं रह सकती। यह अन्योन्याश्रय संबन्ध अपरिहार्य

है। इस सम्बन्ध के द्वारा ही हमारी पूर्ण स्वतंत्रता और मुक्ति हो सकती है।

परन्तु, इस सम्बन्ध को भङ्ग करने वाला ऐ दुष्ट स्वार्थ! तू बीच में कूद पड़ा। तू ने वास्तविक आनन्द को, जो प्राकृतिक और अखण्ड है, अपने मलिन आवरण से ढँक लिया और मुझे असन्तोषी, निरंकुश एवं दुखी बना दिया। तूने मुझे मैदानों की हितकर तथा शुद्ध वायु से वंचित करके छोटी सी दुर्वासित अंधेरी कोठरी में बंद कर दिया। तेरी कुसंगति में पड़कर, मैं आनन्द-सरोवर में मज्जन नहीं कर पाता, किन्तु उस स्वच्छ जल को, अपने छोटे से विषय-पात्र में भर कर बिगाड़ बैठा हूं! तेरे संसर्ग में रहकर, मैं जगत की दृष्टि में और जगत मेरी दृष्टि में निन्द्य, मलिन और नरकोपम होगया। तुझ नीच के अनुसरण में, बल नपुंसत्व में विद्या मूढ़ता में, बुद्धि कपट-साधन में तथा दया वंचकता में परिणत हो गई। तुझ अन्यायी के राज्य में, मैं समाज के श्रेयस्कर बन्धनों से उच्छृङ्खल तो हो गया, पर दुर्वासनाओं का दास बना ही रहा। किम्बहुना, इस संसार में तेरे समान नीच, पापी, कष्ट-दायक एवं त्याज्य दूसरी वस्तु नहीं है!

धन्य उन महापुरुषों को, जिन्होंने निजत्व की भांति परत्व को भी अपना स्वत्व बना लिया है अर्थात् पदार्थ में ही जिन को स्वार्थ का आनन्द आ रहा है!

❧ ❧ ❧

देख, हठ मत कर।

रे निर्लज्ज स्वार्थ, मैंने तुझे कितने बार रोका, पर तूने एक न सुनी और दुराग्रह से मेरे पीछे २ चला ही आता है। देख, लौट जा, हठ मत कर।

तेरे साथ रह कर मैंने क्या २ कष्ट नहीं उठाये और संसार में किससे भला बुरा नहीं कहा? तेरा अंग कोमल है, किन्तु स्पर्श करते ही हाथ प्रचण्ड कामाग्नि से जलने लगता है। तेरा भाषण मधुर एवं मनोरञ्जक है, पर उससे घोर विष के उद्गार निकलते हैं। तू बिना ही मांगे द्रव्य का ढेर लगा देता है, किन्तु उसे तृष्णा-सर्पिणी, जो तेरी सहधर्मिणी है, अपनी बांबी बना लेती है। तेरे नेत्र बड़े ही रसीले और चुभीले हैं, पर दृष्टि मिलाने पर विवेक के राज्य में अन्धा होना पड़ता है। तू चतुर ठग है। तेरी काल-कोठरी में प्रवेश करते हुये मेरे धवल वस्त्र में कलुष-कज्जल की अनेक कुटिल रेखायें खिच जाती हैं। मैंने तुझे भलीभांति जान लिया। देख, लौट जा, हठ मत कर।

रे नीच, जब २ मैंने तेरे बगीचे के फल तोड़ कर खाये, मुझे अजीर्ण रोग हो गया और पेट में तीव्र वेदना होने लगी। तेरी दी हुई मदिरा, पहिले तो मैं बड़े चाव से पी गया, किन्तु उससे प्रमाद सा हो गया और जगत में मैंने असन्तोष और लोभ की तलवार लेकर भीषण रूप धारण किये हुये घोर उपद्रव मचा दिया! मैंने ज्यों ही तेरी सुमन-सेज पर पैर रक्खा, त्यों ही अविद्या के अन्धकूप में गिर पड़ा। रे दुष्ट तेरे संग में मैंने घोर यातनायें भोगीं। मैं तुझे हाथ जोड़ता हूँ पैर पकड़ता हूँ। देख, लौट जा, हठ मत कर।

अरे अधम, तू किसी प्रकार न मानेगा? ले, अब मैं निष्काम प्रेम के राज्य में आ गया। यहां तेरी गति कुण्ठित हो जायगी। तुझे अपना सारा बल और सामर्थ्य खोकर अवश्य ही लौटना पड़ेगा, क्योंकि सच्चे तथा अकारण 'प्रेम' में स्वार्थ का समूल नाश हो जाता है।

निकाल देने योग्य पुजारी।

पुजारी, इस मन्दिर से निकल जा। तूने देवता का अपमान किया है। दर्शकों की भीड़ आती है, पर तू देवता के सामने परदा डाल देता है और और वह निराश हो कर लौट जाती है।

इस मन्दिर के स्वामी ने तुझे इस लिये नियुक्त किया था, कि तू पवित्र पूजा करते करते निष्पाप हो जायगा और दर्शकों के पाप नाश करने में भी आलस्य न करेगा, किन्तु तूने अज्ञान-वश इसके विपरीत ही आचरण किया। तूने आडम्बर के जल से स्नान कर मलिन शरीर को शुद्ध मान लिया और छूत के भय से दीन दुखियों को हाथ पकड़ कर प्रभु के सम्मुख न ले गया! तूने संख और भेरी तो बजाई, किन्तु उसका शब्द किसी के कान में न पड़ा! तूने मन्दिर का बाहिरी भाग सैकड़ों घड़ों पानी से धोया, पर देवता के चरणों पर कभी भाव से आंसू की एक बूंद भी न गिराई। तूने उत्सव के दिन वासना के पताका द्वार पर लगाये, मोह के वितान तान कर वेश्याओं का नाच करवाया, किन्तु रे वञ्चक! क्या तूने कभी सिंहासन भी धोया है? क्या कभी आत्मोत्सर्ग

का भोग लगाया है? क्या कभी स्वार्थ की वत्ती जला कर आरती उतारी है? और क्या किसी दिन धनवालों को न रिझा कर, प्रेम-पूर्वक कीर्तन करते हुये जगदीश्वर को प्रसन्न किया है? नहीं, कभी नहीं।

तू भगवान का प्रेम-पात्र बनने आया था, पर विवेक तथा आत्मबल को त्याग कर कौड़ियों का दास बन गया! तूने नकली वस्त्र और आभरणों से देवता के दिव्य-अंग छिपा दिये। बेचारे प्रेमी चरणों के दर्शन न पा कर रोते हुये घर चले गये। बहुत से तो तेरे बनावटी रूप पर ही मोहित होकर प्रभु के निकट न जा सके!

हे कामी-पुजारी, आज तू मन्दिर से निकल बाहिर हो। तेरे अपराध अक्षम्य हैं। जा, और अपनी कलुषित आत्मा को पवित्र बनाने का यत्न कर।

देख, इस देव-मन्दिर में पूजा का अधिकारी वही हो सकता है, जिसका कि अहंकार इतना कहने मात्र को ही शेष रह गया है कि, 'किसकी सामर्थ्य है, जो मेरे प्रेम को पल भर भी मुझसे अलग कर सकता है?'

* * *

वस्त्र उतार कर फेंक दे।

मूर्ख! अपना वस्त्र उतार कर फेंक दे। यह वस्त्र दुर्वासनाओं के धागों से बुना गया था। इसमें तेरे जीवन-प्राप्त सुख दुख के अनेक टाँके लगे हुये हैं, और मोह के मैल से अत्यन्त मलिन हो गया है।

यद्यपि तेरी दृष्टि में इसका रँग सुन्दर और चटकीला है, तथापि इसकी दुर्गन्धि से तुझे कोई अपने निकट न बैठने देगा। मैला हो जाने के भय से, इसे पहिन कर, तू स्वतंत्रता-पूर्वक हरियाली पर और नदियों की रजतोपम रेत में नहीं लोट सकता।

तेरे प्रकृति-सुन्दर गौराङ्ग को इसने आच्छादित कर के छिपा लिया है। आन्तरिक रूप-लावण्य तेरे हृदय के बाहिर नहीं झलक पाता और न वस्त्र-कार्पण्य से तेरे हृष्ट-पुष्ट अवयव दुर्बलों की रक्षा ही कर सकते हैं।

तू इस अपवित्र वस्त्र को शुद्ध मान कर छूत के दोष से पद-दलित पड़ोसियों से बचता रहा। बाहिरी चमक दमक की उपासना कर के सहज-सौन्दर्य का निरादर किया और प्रेम-पूर्ण आत्म-विकाश का प्रकाश अखिल-विश्व पर न पड़ने दिया।

आज, तू अपना जन्म-जन्मान्तर का जीर्ण वस्त्र उतार कर फेंक दे। देख, फिर तेरी शोभा, केवल शोभा, बिना बुलाये ही संसार को अपनी ओर आकर्षित कर लेगी। उसका आलोक प्रकृति पर पड़ेगा और जगत में सुख-शान्ति का प्रसार तुझ नग्न-शरीर वाले से ही हो सकेगा।

तेरा प्रिय मित्र तुझसे मिलने को आयेगा। वह तुझे अपने हृदय से लगा लेगा। क्या ही प्रगाढ़ालिङ्गन होगा, क्योंकि अन्तर (भेद-बुद्धि) डालनेवाला नीच वस्त्र दोनों हृदयों के बीच से हट कर दूर हो जायगा। द्वैतता उड़ जायगी और तब ही तू अद्वैतानन्द का पूर्ण अनुभव कर सकेगा।

* * *

तत्व-ज्ञानी की राम कहानी ।

त्व-ज्ञानी, तूने पदार्थ विज्ञान और भौतिक वाद से क्या लाभ उठाया ?

तत्व-ज्ञानी बोला—'मैंने परतन्त्र अनुमान के परिमाण द्वारा वैज्ञानिक पहाड़ियों और घाटियों की उंचाई निचाई की माप कर डाली । विविध वर्ण के फूलों का सौरभ न लेकर उनकी कलियों और पत्तियों की गणना करता फिरा । शीतोष्ण मापक यंत्र से ऋतु-परिवर्तन का पता लगा लिया, किन्तु प्राकृतिक नियमों का शासक बनने का प्रयत्न न किया । विचार-यात्रा करते र थक गया, पर किसी स्वतंत्र सुरक्षित स्थान में बैठ कर कभी घड़ी भर विश्रान्ति-सुख न ले पाया । निःसन्देह, मैंने अनेक घटनायें देख कर उनके व्यापक तत्व का अन्वेषण कर लिया, किन्तु उस तत्व से मेरा कोई नित्य-सम्बन्ध न हो पाया । वैज्ञानिक पुस्तकों के पढ़ने में मनोरञ्जन तो अवश्य हुआ, पर वास्तविक आनन्द से सदा विमुख ही रहा । मैंने प्रत्येक स्वादिष्ट फल के बाहिरी बकले पर हाथ फेरा, पर उसके भीतर का मधुर रस पान न किया ! धूल में सने हुये घी को निचोड़ कर फिर धूल में डाल दिया और धरती में गड़े हुये सड़े पदार्थ खाकर अपने मस्तिष्क का स्वास्थ्य बिगाड़ बैठा !'

तत्व-ज्ञानी, तुझे अनात्म-वाद में क्या आनन्द मिला ?

उसने उत्तर दिया—'क्या कहूं, मैंने बुद्धि का दुरुपयोग कर के सत्य-ज्ञान-मूलक नित्य-तत्व को अज्ञेय मान लिया ।

मैंने विचार की एक बड़ी भारी दीवाल तो उठा ली, पर उसकी नींव में हृदय-भावना, स्वावलम्बन, श्रद्धा और स्वानुभव का पूर्ण अभाव रक्खा। अपने आन्तरिक-आलोक को कुतर्क-वाद से ढक कर तमाच्छन्न मनोग्रह में मूल तत्व को टटोलता रहा, और उसके न मिलने पर नास्तिकता का प्रचार करने लगा। मैंने प्रत्येक विषय पर कीर्ति प्राप्त करने की इच्छा से विचार तो किया, पर अभ्यास और प्रतीति द्वारा उसका साक्षात्कार न किया। आज, मैं अपने शुष्क तर्क-वाद पर पश्चात्ताप कर रहा हूँ।'

तत्व-ज्ञानी, क्या तू विज्ञान द्वारा आत्म-दर्शन कर सकेगा?

उसने उत्तर दिया—'नहीं, मुझे श्रद्धा-मूलक शुद्ध बुद्धि की शरण में जाना होगा, क्योंकि विज्ञान तो केवल मानसिक क्रियाओं का मापक है और आत्म-दर्शन मन और वाणी दोनों से परे है।'

* * *

अब, पहुंचना ही चाहिये।

इस विचित्र रङ्ग शाला में नाटक देखते देखते आधी रात बीत गई। परदे खुले और उनके भीतर नये नये दृश्य दिखाई दिये। बड़ी धूमधाम से राजे महाराजे आये, चारु-हासिनी युवतियों के हाव-भाव और कटाक्ष हुये, हास्य-विनोद से संपुटित कलियां खिल उठीं और गीत वाद्य के मधुर-आलाप में सभों ने धन्य २ की अविरत ध्वनि लगा दी। अब, रात का तीसरा

पहर आ गया है। यवनिका के चित्र फीके पड़ गये, स्मशान की भीषण ज्वाला जल उठी और कफ़न में लिपटे हुये हज़ारों मुर्दे नेपथ्य में जमा हो गये !

हाथ से हाथ मिलाने वाले मित्र पीठ फेर कर चले गये प्रकृति ने निद्रा की काली चादर ओढ़ ली। हाट में हल्ला नहीं सुनाई पड़ता। स्वर में आह निकलने लगी। छन्द का अन्त्यानुप्रास हाय २ में समाप्त हो रहा है। मदोन्मत्त गयन्द ने देखते ही देखते अपने कठोर पदाघात से सुकुमार पुष्प कुचल डाले। कामिनी का अधर-रस हलाहल में परिणत हो गया। जीवन-चर्या के पन्ने देखे जा रहे हैं और लेखक हिसाब लेने को आ गया है।

अब, यहां घड़ी भर भी न ठहरना होगा। नाटक-शाला के अन्तिम परदे के उस पार जाना होगा। जल्दी करनी चाहिये, नहीं तो द्वार पर भीड़ लग जायगी और पीछे रहना पड़ेगा। इस परदे में हो आगे का प्रकाश दिखाई देता है। उसमें वासनाओं की अनेक आकृतियां बनी हुई हैं। वहां जाते भय और लज्जा दोनों ही ने दबा लिया। अब, क्या करूँ ?

चाहे जो हो, वहां पहुंचना ही चाहिये। न्यायाधीश सभा में आकर बैठ गया होगा, क्योंकि 'सावधानी' की घण्टी बजने लगी।

* * *

अब, चल दूंगा।

कि यह संसार जहाँ मेरे जीवन के प्रत्येक कार्य नलिनी-दलगत-जल-बिन्दु के समान शान्ति से, बिना किसी के हृदय पर आघात किये, व्यतीत होते जा रहे थे, जिन महानुभावों के गोष्ठी व सान्निध्य में मेरे जाने से किसी प्रकार की बाधा न पड़ती थी, जहांके विशाल दृष्टि-क्षेत्र में मेरे तुच्छ विचारों को भी एक छोटा सा स्थान मिल जाता था और जहां धीरे २ उस मानसिक संस्थान का निर्माण हो रहा था, जिसकी परि-समाप्ति अब भी सुख-सामञ्जस्य में होगी, आज के दिन मेरी विचार-तरङ्ग माला सांसारिक परिस्थिति रूपी तूफ़ान से चंचल होने लगी है, मेरी स्वतंत्रता शनैः २ स्वार्थियों की कृतघ्नता रूपी कालकोठरी में छिपती जा रही है, और मेरी आत्माके पूर्ण विकाश को खल-संकीर्णता ने तिरस्कृत कर दिया है, अतएव मैं उस प्रदेश को चल दूंगा, जहां सत्यवती नदी के सतत प्रवाह से विवेक-धान्य-सम्पन्न भूमि हरी भरी रहती है, जहां नीति-कला, सभ्यता और जड़-विद्या के अनुसंधान हिमालय के वक्षस्थल से टकराते हुये मेघों की नाईं छिन्नभिन्न हो जाते हैं, जहां की वायु में सत्ताधिकारियों की स्वार्थमयी वार्त्तों का एक भी शब्द नहीं सुनाई देता है, जहां के द्वार दिन रात खुले रहते हैं, जहां भेद में अभेद और जड़ में चैतन्यात की झलक दिखाई देती है, जहां भावुकता और आत्मता का अभ्युदय काव्य के पद-लालित्य की भांति संगठित हो रहा है, जहां संयोग वियोग का अभाव नहीं है, किन्तु तादात्म्यता

धारण करने के कारण नित्य एवं प्रेमानन्द दायक हो गया है, जहां मेरे अतीत-विचारों ने पहिले ही से दृढ़ दुर्ग बना रक्खा है, जहां की प्रकृति दोनों हाथ पसारे हुये मुझ से मिलने को अग्रसर हो रही है, जहां स्वागत करने को लांछना-रहित पशु-पक्षि-गण एकत्रित हो गये हैं, और जिस पावन प्रदेश में, आत्मभाव के स्वदेश में स्वयं प्रेमदेव मेरा अनन्य सखा और सहायक बन रहा है।

बाल-काल ।

हाँसी बिन हेत मांहि दीखति बतीसी कछू, निकसी मनो है पांति ओछी कलिकान की। बोलन चहत बात निकसि जात टूटी सी लागति अनूठी मीठी बानी तुतलान की। गोद तें न प्यारि और भावे मन कोई ठांव दौरि २ बैठें छोड़ि भूमि अंगनान की। धन्य धन्य वे हैं नर मैले जे करत गात कनिया लगाय धूरि ऐसे सुवनान की।

—राजा लक्ष्मणसिंह कृत शकुंतला

Verily I say unto You, except ye be converted, and become as little children, Ye shall not enter into the kingdom of Heaven; suffer the little children to come unto me and forbid them not, for of them is the kingdom of Heaven.

—*Jesus Christ.*

❧ ❧ ❧

बाल-सौन्दर्य।
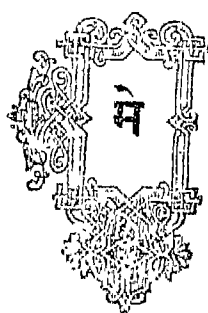
रे लाल! जब मैं तुझे अपनी गोद में बिठा लेता हूं, तब मुझे बिखरे हुये फूलों के समेटने का सुख मिल जाता है।

जब मैं तुझे उछंग उठा लेता हूं, तब फूलों की गेंद उछालने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

जब मैं तुझे मार्ग में जाते हुये देखता हूं, तब दूध में घुलती हुई मिश्री की सुधि आ जाती है।

जब मैं तेरा थिरकना या दौड़ना निरखता हूं, तब मुझे सितार की लय-परा गति सुनने की उत्कंठा हो आती है।

जब मैं तेरी मुसकराहट की ओर ध्यान देता हूं, तब मुझे पीत मेघ छूते हुये इन्द्र-धनुष का स्मरण आ जाता है।

जब मैं तेरे तोतले वचन सुनता हूं, तब मुझे प्रातःकालीन विविध पक्षियों के चुहचुहाने का अनुभव होता है।

जब मैं तेरी कोमल हँथेलियाँ अपने गालों में लगा लेता हूं, तब ओस-बिन्दु झलकती हुई गुलाब की पँखुड़ियों के छूने का आनन्द सहज ही मिल जाता है।

जब मैं तेरे घुँघरारे बालों को सुलझाता हूँ, तब मुझे रेशमी रूमाल बुनने की याद आ जाती है।

जब मैं तेरा मुख-चुम्बन करता हूँ, तब मेरे अंगों में कमल-पराग की सुगंधि भर जाती है।

जब मैं हाथ फेरता हुआ तुझे गाकर सुलाता हूं, मुझे ताल और स्वर की पूर्ण संगति तभी ज्ञात होती है।

प्रिय वत्स, तू सुन्दर नहीं है, किन्तु स्वयं 'सौन्दर्य' है। तू त्यागी तथा निःस्वार्थी है। यही कारण है कि तेरा आदर्श निर्मल है और उसमें ईश्वरीय प्रेम का प्रतिबिम्ब पड़ता है।

❧ ❧ ❧

बालक की ढिठाई।

मैं तेरे हटकने से न मानूंगा। मैं तो तेरे ही आंचल से अपना धूल लगा हुआ शरीर पोंछूंगा और ऊधम करता २ तेरे ही गोद में बैठ जाऊंगा।

क्या तू मुझे हाट देखने को भेजती है। मैं उस हाट में कभी न जाऊंगा, जहां धनवानों के लड़के सुन्दर वस्त्र और गहने पहिने हुये मेरी ओर हँसते और मुझे खिझाते हैं। उनके पास पैसे हैं। वे मिठाई और क्षण में टूट फूट जाने वाले खिलौने मोल ले सकते हैं, पर मैं तो निर्धन हूं! नहीं मा, मैं निर्धन क्यों हूं? मेरे पास तेरी दी हुई एक रोटी है, मैं उसे खाकर ऐसा बलवान हो जाऊंगा, कि नगरवासी भले आदमियों के लड़के मुझ से किसी भांति न जीत सकेंगे।

मा, मैं तो उस निर्जन बन में ही जाऊंगा। तू मुझे बनैले पशुओं से डराती है; वे मेरा कुछ भी नहीं कर सकते,

क्योंकि वे गांव के खिलाड़ी लड़कों की तरह धोखा देना नहीं जानते। सुदूरवर्ती नदी के तट पर लगे हुये वृक्षों के फल तोड़ २ कर खाऊंगा और पशु-मांस खाने वाले नगर के कठोर बालकों के हृदय में दया भर दूंगा।

न मा, तू मुझे मत छेड़। ले, मैं तेरे कपड़े उतारे देता हूं, और नंगा ही धरती पर लेट जाऊंगा। देख, मेरे प्रकृति-सुन्दर बालों को तेल और कंघी से मत बिगाड़, नहीं तो मैं अपने अंग पर कीचड़ डाल लूंगा। मा, मुझे उस वन में ही जाने दे। देख, मैं वहां से खेल कर बड़ी जल्दी लौट आऊंगा, क्योंकि दिन रात विविध प्रकार के भोजन करते हुये भी, बिना तेरा दूध पीने के कल नहीं पड़ता!

मा, चाहे तू मुझे इस पर मारे भले ही, पर मैं ढिठाई न छोड़ूंगा, कारण कि "तू मेरी मा है, और मैं तेरा बालक हूं।"

* * *

सरला पर दुलार।

बेटी, यहाँ आ और मेरी गोद में बैठ जा। तू कब की खेलने गई? देख, मैं एक घंटे से तेरी भोली सूरत देखने को इस चौकी पर बैठा हूं। बिना तुझे देखे मेरा जी घड़ी भर भी नहीं मानता।

बेटी, मैं तुझे क्या कह कर बुलाया करूं? तेरे विशाल नेत्रों में दया और करुणा भरी है। तेरे हँसने में माधुर्य रस का संचार होता है। तेरा बोलना मनोहर और गम्भीर है।

तुझे सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहिनने की कुछ भी रुचि नहीं है। तू बालों को कभी सुलझाती ही नहीं। तो भी तेरी शोभा प्राकृतिक है। तेरा स्वभाव शान्त और सु-संस्कृत है। सरलता तो तेरे अंग अंग से झलकती है। ले, तो आज से, मैं तुझे 'सरला' के नाम से ही पुकारा करूंगा।

अभी तेरी वय नव वर्ष की भी न होगी, किन्तु तेरा बाल-हृदय इतना उदार और उच्च है, कि तू खेल कूद छोड़ कर नित्य ही द्वार पर मधुकरी माँगने वाले बाबा की बाट देखती रहती है। तू बेचारे पशुओं और पक्षियों पर बड़ा प्यार करती है। आप नहीं खाती, पर उनको खिलाती है। जब कोई उन्हें मारता है, तेरी आँखें डबडबा उठती हैं। यह तेरी ही दया का कारण है, कि हम लोगों की हिंसा से पूर्ण घृणा हो गई !

सरले ! सती, सीता, सावित्री, दमयन्ती आदि की कथा पढ़ने में तुझे बड़ा आनन्द आता है। रामायणान्तर्गत सीता-अनुसूया-सम्वाद का नित्य ही पाठ किया करती है। जब कभी मैं तुझे कोई धार्मिक उपदेश देता हूं, तू उसे बड़े चाव से सुना करती है। यही कारण है, कि मैं तुझे बड़े लाड़ से बुलाता हूँ।

अधिक क्या, तू साक्षात् हित की पुत्री तथा प्रेम की भगिनी है। तेरा आदर्श उच्च एवं सौभाग्य असीम है। तेरे सहज स्नेह में मुझे ईश्वरीय प्रेम की झलक आ रही है। इसी से तो, मैं तेरी दिव्य मूर्ति देख कर, विरक्त-आश्रम में बैठ कर भी गार्हस्थ्य-जीवन का अनुभव करने लगता हूँ।

प्रिय बेटी, यह सेब का फल लो और घर जाओ। पढ़ने लिखने में खूब मन लगाना और सदाचार की सदा ही रक्षा करना, क्योंकि एक 'सदाचार' ही तुम्हारा अमूल आभूषण है।

परमात्मा तुझे चिरंजीव और सुखी रक्खे !

अधीर-बालक।
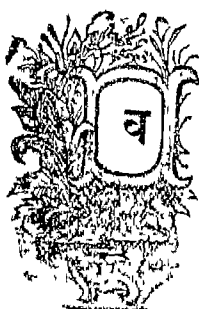
वत्स ! रोओ नहीं। तुम्हारी मा आने वाली है। हम उसे बुलाये देते हैं।

बालक फूट २ कर रोने लगा। 'नहीं तुम ने मेरी मा को कहां भेज दिया है? मुझे भी वहां भेज दो। मुझे अपनी मा के बिना यह नीरव आकाश निराशा से परिपूर्ण मालूम होता है। ये साथ के खेलने वाले मुझे अपने पास बुला रहे हैं, पर मुझे उनके निकट जाने में ऐसा भय लगता है जैसे टिटहरियों के बीच में सुवे के बच्चे को! तुम्हारे दिये हुये खिलौने मेरे हृदय पर कठोर आघात कर रहे हैं और इन मीठे मीठे फलों के छूने से हाथों में तीव्र वेदना हो रही है। मैं बार २ खिड़की के किवाड़ खोल कर किसे देखता हूं? निष्प्रयोजन खड़े हुये वृक्षों की ओट में छिपा अज्ञात-सुख मुझे लोभाय रहा है? ये निरन्तर रोने से धुंधले नेत्र किस विस्मय-सागर में गोता लगाना चाहते हैं? यह मेरा अधीर हृदय धड़क २ कर किस तमाच्छन्न गहन वन में पैर रख रहा है? कहां, किस ओर और कैसे इस निरालोक मार्ग में हो जाना होगा?

मेरे लाल, घबड़ाओ नहीं। देखो, तुम्हारी प्यारी मा आती ही होगी, क्योंकि वह तुम्हारी अधीरता को भलीभांति जानती है।

बालक—'नहीं, मुझे विश्वास नहीं होता। कंटकाकीर्ण गुलाब फूलने लगा। निर्जन वन में भूले हुये हंस-शावक पता लगाते २ अपने सरोवर में पहुंच गये और गिरि-गुहा में सोती हुई पवन तरु-शाखाओं के साथ खेलने लगी, पर मेरा

नन्हा सा हृदय अब भी विस्मित हो कर प्रतीक्षा की अनन्त सीमा पर खड़ा है। सामने के दीपक टिमटिमा रहे हैं, पर वे मेरे अंधेरे घर को प्रकाशित नहीं कर सकते। यह क्या, कोई स्नेह की दृष्टि से संकेत कर बुला रहा है। उसकी करुणा की छाया मेरे मुख पर पड़ रहा है। मुझे वहां जाने दो, जहां की वायु मेरे प्राणों में संचार कर रही है और जिसके हृदय का दूध पीने से मेरा अधीर मन निराशा के काले कठोर पत्थर को पिघला रहा है।

मित्र-विनोद ।

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्,
पर्युत्सुकी भवति यत्सुखितोऽपिजन्तुः ।
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वम्,
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥

—अभिज्ञान शाकुन्तलम् ।

मा भूत् सज्जन सङ्गो यदि सङ्गो मा पुनः स्नेहः ।
स्नेहो यदि मा विरहो यदि विरहो मा पुनश्च जीवितम् ॥

"So friend, when first I looked upon your face
Our thoughts gave answer each to each, so true,
Opposed mirrors each refleting each,
Although I knew not in what time or place,
Methought that I had often met with you,
And each had lived in other's mind and speech"

—*Tennyson.*

⁂

सम्बोधन।

मित्र! धैर्य धरो, धैर्य धरो। घबड़ाओ नहीं, क्योंकि,

यह प्रचण्ड 'तूफ़ान' शीघ्र ही काल की असीम गुहा में विलीन हो जायगा, और तुम्हारा जीवन-सागर फिर पूर्ववत् प्रशान्त और सुखमय हो जायगा।

तुम्हारे उस समय के शुभ-विचार, आत्मानुकूल विचार, जो आज जल-तरंग में चक्कर खाती हुई पवन के समान मनोराज्य में आन्दोलन कर रहे हैं, भविष्य के आशा-पूर्ण पुण्य तीर्थ में निमज्जन करने से उज्ज्वल और निष्कलङ्क हो जायेंगे।

आज-कल की परिस्थिति, जो वास्तव में, ऐसे भयंकर परिमाण द्वारा तुम्हारे विशुद्ध हृदय की परीक्षा ले रही है, किसी दिन मंगलमूर्ति धारणकर लेगी और तुम इस सौभाग्य-देवी के दर्शन से कृतकृत्य हो जाओगे।

यह कर्म का प्रवाह, जो स्वार्थ-परता के संसर्ग से मनोवृत्ति को चंचल और अशान्त कर रहा है, एक दिन निर्ममत्व तथा नैष्काम्य द्वारा तुम्हारे आदर्श को पूर्णता की आन्तरिक सीमा के पास पहुंचा देगा।

आज के दिन, जो तुम लोकापवाद और सत्ताधिकारियों की अनकृपा हो जाने के विचार से भयभीत हो रहे हो, वह सब (भय) स्वप्न-सदृश नष्ट हो जायगा; और तुम अपने आत्म-बल से इन्द्र का सिंहासन भी हिला देने को समर्थ हो जाओगे।

प्रिय मित्र! वह समय, सुसमय, शीघ्र ही उपस्थित होने वाला है, जब कि हम लोग उस निर्भय स्थान में पहुंच जायगे, जहां हमारे विचारों ने पहिले से ही भव्य-भवन निर्मित कर रक्खा है, और जहां हम लोग अपने प्राण-सर्वस्व प्रेम की भलीभांति आराधना कर सकेंगे।

घबड़ाने की बात ही क्या? सोचो तो, हम कौन हैं? हम जड़ पदार्थ नहीं हैं, पशु-कीट-पतङ्गादि नहीं हैं, हम मनुष्य हैं, चैतन्य हैं, अमर हैं और स्वानुभव लेने वाले आनन्द रूप आत्मा हैं!

❀ ❀ ❀

क्या वे दिन याद हैं?

वे दिन याद हैं, जब रात को हम तुम दोनों जब प्रेम-कथा कहते २ अधीर हो जाया करते थे? अकारण प्रीति पर प्रश्नोत्तर, मिलन की उत्कण्ठा, चपल चखों की प्रतीक्षा, प्रेम-कलाप, विरह-विलाप और उसका अकस्मात् आगमन? अनिमेष हेरना, कंठ भर आना, कुछ कहते न बनना, आंसुओं का तार लगा देना और त्रिलोक को वारते हुये उसे हृदय से लगा लेना? उसकी रिस से भौंह चढ़ती थी और यहां निशाने बनने की होड़ लगाई जाती थी! कवियों के हृदय में नीरसता और अकिंचिनता पाकर गिन नई २ उपमायें गढ़नी पड़ती थीं। मेघ और पपीहा, चन्द्र और चकोर, लोहा और चुम्बक, दीपक और पतंग के दृष्टान्त तो प्रतिक्षण दिये जाते

थे। उसका वात्सल्य भाव सरल, निश्छल, दिव्य और नित्य था, और यही कारण था कि उसके निर्मल आदर्श का आलोक पड़ने से यहां अष्टांग योग सहज ही सिद्ध हो गया!

क्या वह समय याद है, जब देव-दर्शन के मिस से ठीक आधी रात को सभय प्रेम के चरणों का स्पर्श किया था? वह सो रहा था। उसके स्वप्न की मृदु मुसकान से अमृत-बिन्दु झड़ रहे थे और चन्द्र-रश्मियां वही पीयूष-पान कर करके जन्म-कलंकी निशाकर को 'सुधाकर', बना रही थीं।

कभी २ तो 'दिल मुश्ताक हुआ है परे, तेरे देख तमाशे' आदि तुकों के सैकड़ों पुनीत-पारायण हुआ करते थे। परि-मितता का आदर, नर-शरीर की सार्थकता और परतन्त्रता में स्वतंत्रता का आनन्द उसके एक मात्र ध्यान में ही आता था। उसके पीछे गृह-सम्बन्ध से उच्छृंखल हो जाना, वृथा-भिमान का चूर्ण कर देना और मनोराज्य में सुखमय निवास करना हँसी खेल था!

वे कौन दिन थे, जब भावी-जीवन-रहस्य पर, प्रेमपूर्ण वेदान्त पर, और जगत की अनिर्वचनीयता पर विचार करते २ सारी रात बीत गई, किंतु कथा का श्रीगणेश तथा इतिश्री प्रेम-देव के चरित-गायन पर ही हुई। एक दिन वह था, जब हाथ जोड़कर उससे क्षमा मांग रहे थे। अपने क्षुद्र अंतःकरण को बार २ धिक्कारते हुये सच्चे वैराग्य से उसके सामने मृत्यु का भी स्वागत करने को तैयार हो गये थे।

सब स्मरण होगा और आजन्म रहेगा, क्योंकि भगवान् प्रेम देव के चरिताङ्क विरह-पत्र पर लिखे रहने के कारण अमिट और नित्य हैं। किन्तु आज तो इस प्रेम-अधीर हृदय को बार २ समझाते हुये भी महात्मा सूरदास का यही पद याद आता है कि,

'सबै दिन नाहिं एकसर जात'।

उपालम्भ।

मित्र, क्या कारण है, कि आप ने मेरे छोटे से बालक को ललकार कर अपने सामने से हटा दिया। क्या अन्य क्रीड़ासक्त बालकों के साथ न खेल कर उसका दूर बैठ जाना आप के मन में खटकता है? क्या बेचारे दीन पक्षियों पर अकारण पत्थर फेंकना व पोखरियों में कूदते हुये मेढकों और मछलियों को फँसा कर पकड़ना ही सभ्य बालकों का इति कर्तव्य है? क्या सब के साथ मिल कर अट्ट-हास्य करना अथवा अपना मान चाहते हुये दूसरों का अपमान कर देना आदर्श बालक का लक्षण है? क्या आप ने उसे इसी-लिये हटा दिया है, कि वह बाल-समाज की चपलता और लालुपता में न पड़ कर सदा शान्त-चित्त बैठा रहता है? क्या वह इसी कारण तिरस्कृत किया गया है, कि वह छल-कपट न जानता हुआ सब के आगे स्पष्ट-भाषण करता है?

जो हो, वह तो बड़ा ही सरल है। उसके विशाल नेत्रों में इतनी दया है, कि वह किसी घायल पशु को देख कर घंटों रोया करता है। उस अल्पवयस्क बालक के आगे, जब संसार-त्याग अथवा ईश्वर सम्बन्धी कोई चर्चा की जाती है, तब उसकी आँखों में आँसू भर आते हैं और बार २ उसी कथा के सुनाने को हठ करने लगता है। जब वह मेरी गोद में दीन और अनमना सा बैठ जाता है, मेरा हृदय करुणा और स्नेह से भर जाता है। मैं उसके माथे पर हाँथ फेरता हुआ पूछता हूँ, कि 'कहो वत्स! तुम्हें क्या दुख है?' पर वह दीन बालक संकोच वश कुछ उत्तर नहीं देता। उसकी

मन्द मुसकान से कौन कठोर हृदय वाला मोहित नहीं हो जाता ? वह साक्षात् प्रेम की मूर्ति है । वह अनाघ्रित पुष्प किसी का तिरस्कार कैसे सह सकता है ?

मित्र, आश्चर्य है, कि आप ने उसकी ओर कैसे टेढ़ी नज़र की होगी ! पर धन्य उसकी सहज बाल-छवि को, कि आप उसे मनाने को पीछे २ दौड़ते चले आये !! मेरी आप से यही विनय है, कि यह बालक किसी भांति दुखी न हो, क्योंकि इसी एक जीवनाधार पर मेरा और आप का सुख दुख निर्भर है ।

❧ ❧ ❧

ऐसा कौन सा अपराध हुआ ?

जिस विराट-भवन में नीरव नभो-मण्डल का पूर्ण-प्रसार हो गया है, मूक एवं निस्तब्ध तारागण द्युतिवान बनने का गर्व कर रहे हैं, सरोवर का विमल सलिल प्रसुप्त बालक के सुस्मित पूर्णानन इव स्थिर तथा शान्त हो गया है और जहां नीचातिनीच आदर्श भी स्वार्थ-यातना से विमुक्त होकर सुखानुभव कर रहे हैं, क्या वहां की देहरी के पास खड़े होने में भी मुझ हतभाग्य को मनाई है, क्या उस स्वतंत्र राज्य की सीमोल्लङ्घन करना मेरे लिये कलङ्क तथा पाप है ?

जो स्थान, किसी अतीत काल में, सहृदयता और सरलता के चित्र-पटों से सुसज्जित था, जहां भय, संकोच, लज्जा, तथा लौकिक-शिष्टाचार अनन्य मैत्री द्वारा लुप्त-प्राय हो गये थे और जहां "स्व-परत्व" का संकुचित दृष्टि-कोण विशुद्ध-प्रेम से तिरोभूत हो गया था, क्या अब वहां मुझे बुलाते हुये

पश्चात्ताप करना पड़ता है अथवा यह पवित्र हृदय (मेरी समझ में तो आज भी पवित्र !) मेरे एक क्षण के सहवास से भी प्रायश्चित्त करने योग्य हो जाता है ?

जहां पराधीनता और परावलम्बन का आज भी थोड़े बहुत अंशों में तिरस्कार हो रहा है, जहां की "साहित्य-स्मृति" से अब भी अकथनीय आनन्द की झलक आ जाती है और जहां आत्मता, भावुकता तथा स्नेह-लता पूर्ववत् ही हरित एवं फल-सम्पन्न दीख रही हैं, उस सुहृद-नन्दन की कुंज-कुटीर में बैठने का मुझे एक पल भी सौभाग्य प्राप्त नहीं होता ! ज्ञात नहीं कि वह कौन सा अप्रतिम अपराध है, जो मेरे निर्लज्ज जीवन को क्षण प्रतिक्षण अधीरता के अगाध-सागर में विपन्न कर रहा है !

* * *
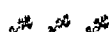
अकस्मात् आगमन

कल ग्रीष्म-ऋतु ने अपनी प्रचण्डता चरम सीमान्त पहुँचा दी थी। दिन भर उष्णवात (लू) के झकोरों से ज्वर सा हो आया। इस लिये मैं रात को आठ ही बजे से कुसुम-सरोवर के प्रमोद-घाट की ठंडी चौकी पर लेट रहा, और निद्रा की प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर में चन्द्रोदय हुआ। शुभ्र-शशि-किरणावली सुकुमारता दिखाती हुई मेरे व्यथित-शरीर पर अमृत-जल छिड़कने लगी। ग्रीष्म-ताप शान्त हो गई और मैं आनन्द में राग अलापने लगा।

मल्लिका-सौरभ-वाहिनी शीतल समीर ने धीरे से आ कर कान में यों कहा, 'चिर वियोगी, सो न जाना, आज तेरा

वही परम-प्रिय-मित्र मिलने को आवेगा'! मैंने इस पर कुछ भी ध्यान न दिया, क्योंकि मुझे विश्वास था कि वह तो बड़ा ही निष्ठुर है, मुझ भिखारी के पास काहे को आने चला?

किन्तु, मित्र-वियोग की खबरें आने लगीं और मैं मन ही मन 'हाय-सांसें' भरने लगा! मेरी विरह-दशा देख कर गर्वीली किरणें हँसती हुई जल-तरङ्गों के साथ कटाक्ष घालने लगीं! कुछ देर में अपने ही भांति दूसरों का दुख समझने वाली विरह-पीड़ित गढ़ूल खिल उठी। वह मुसकरा कर मुझ से बोली, 'प्रेमी! धीर धरो, तुम्हारा प्यारा सखा आज अवश्य आवेगा।' मुझे तौभी आशा न बंधी, क्योंकि उस कठोर हृदय वाले ने बरसों से पत्र-व्यवहार करना भी छोड़ दिया था।

कलङ्की निशाकर का मुख दीख पड़ने से दोनों आंखें मींच कर सोने को चाहा, पर ऐसे समय पर नींद कहां? किसी ने बड़े ही कोमल स्वर से कहा, कि 'मैं आ गया!'

मैंने समझा कि कोई मसखरी कर रहा है। किसी ने अपने ठंडे हांथ लगा कर आंखों पर से मेरे दोनों हाथ हटा दिये। अहा! जब मैंने देखा, तो सचमुच ही मेरा जीवनाधार मित्र पास बैठा हुआ मेरे आंसू पोंछ रहा है!

मुझसे कुछ भी न कहते बना। जल्दी से उठ कर उसके हृदय से लग गया। क्या ही मित्र-मिलाप वा प्रेम-कलाप हुआ! वायु और गढ़ूल मुझे लजाने लगे, और कुसुम-सरोवर आनन्द-सरोवर में मिल कर एक हो गया!

❧ ❧ ❧

अब, कब मिलोगे ?

मित्र, उस रात को तुम्हारे आने का सन्देश मिला। मैंने उसी समय हृदय-द्वार खोल दिया। निर्वाण-प्रायदीप में तेल डाल दिया और तुम्हारे स्वागत के अर्थ विविध प्रकार की रचना करने लगा।

आने की घड़ी अज्ञात थी, और मेरा विरह-पीड़ित हृदय दर्शन के लिये अधीर हो रहा था। प्रतीक्षा करते २ दिन के काम काज दबे पांव निकल गये। रात्रि के प्रवेश ने व्याकुलता का आदेश सहर्ष प्रदान कर दिया। एक ओर विरह-पीर तो दूसरी ओर मिलन-आशा!

वह सुअवसर आ पहुंचा और तुम्हारे अभिलषित दर्शन मिल गये! तुम्हें देखते ही मैं निस्तब्ध हो गया। हाथ की पुस्तक एक ओर रख दी। वियोग-दुख तो दूर हो गया, किन्तु प्रेम और संकोच ने सरलता का परदा मेरे मुख पर डाल दिया। बोलना बन्द हो गया, पर चिर-पिपासाकुल नेत्र तुम्हें देखते ही जाते थे।

मन ही मन कहने लगा, 'यह क्या, कि जिनके पास बैठ कर शिष्टाचार, भेद और संकोच त्याग कर सहज ही ढिठाई से बोलता था, आज थोड़े ही दिनों के अन्तर से उन्हीं अभिन्नहृदय मित्र से, परम प्रिय सुहृद् से, बोलने में आँख नीची पड़ गई और मुंह बन्द हो गया? मैं चाहता था, कि इतने दिनों के सोचे हुये विचार मित्र पर एक २ कर के प्रकट कर दूंगा, पर अब कुशल पूंछने को मुंह नहीं खुलता!'

आश्चर्य, कि तुम भी कुछ न बोले और हंस कर किसी मिस से चलने को तैयार हो गये! उस समय मुझे सब भूल गया और क्षणस्थायी स्वप्न का दृश्य आंखों में झूलने लगा। अधीरता और निराशा का धुंआ चारों ओर फैल गया। मैं तुम्हें जाते हुये, आंख फाड़ २ कर देखने लगा, पर उस धुंधले-पन में तुम्हारे दर्शन भी दुर्लभ हो चले। आंसू बह उठे और तुम्हें एक बार संकेत से फिर लौटाया। तुम खड़े होकर मेरी ओर स्नेह की दृष्टि से देखने लगे! मैंने तुम्हारा हाथ पकड़ कर कम्पित स्वर से इतना ही कहा,

"अब, कब मिलोगे?"

(६)

स्वदेश और समाज।

'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'।

"Where the mind is without fear and the head is held high;

Where Knowledge is free;

Where the world has not been broken up in to fragments by narrow domestic walls;

Where words come out from the depth of truth;

Where tireless striving stretches its arms toward perfection;

Where the clear stream of reason has not lost its way in to the dreary desert sand of dead habit;

Where the mind is led forward by thee in to ever writing thought and action—

Into that heaven of freedom, my Father, let my country awake."

—TAGORE'S GITANJALI,

(Pages 27 & 28.)

* * *

मेरा जन्म उस देश में हो !

हे जगदीश ! मेरी आन्तरिक कामना यही है, कि मेरा जन्म उस देश में हो, जहां कि प्रत्येक संस्था धर्म-मूलक हो, जहां ब्रह्मानंद के प्रशान्तसागर में शान्ति-दायिनी जीवन-नौकायें चलती हों, जहां क्षमा, संतोष और आत्मत्याग के गीत यश-मरन्द-वाहिनी-समीर में सुनाई देते हों, जहां दयानुगामिनी सरितायें कल कल शब्द करती हुई प्रबोध-वारीश में गिरती हों, जहां सद्वृत्ति तथा स्वनाम-धन्यता की वृष्टि से खेत धन-धान्य पूर्ण हों और जहां की प्रकृति मुक्ति-प्रदायिनी हो !

हे प्रभो, मेरी जन्म-भूमि वहां बनाइये, जहां अनेकानेक अत्याचार होने पर भी जीवन-प्रभाके चिन्ह ज्यों के त्यों अवशेष हों, जहां की रत्नगर्भा पृथ्वी ने काम-दुहा धेनु की नाईं अपने प्रिय वत्सों से भी बढ़कर स्वार्थ-पर विजातियों को धन, विद्या, कला-कौशल एवं सभ्यता सहर्ष प्रदान की हो, जहां के उदार-चरित धार्मिक निवासियों ने शत्रु की रुधिर-पांसनी कराल करवाल का चन्दन अक्षत से पूजन किया हो, जहां की पद-दलित दीन प्रजा ने घोर आपत्ति के समय भी 'राजभक्ति' का महा मंत्र विस्मरण न किया हो, और जहां के कृतज्ञ तथा प्रत्युपकार करनेवाले लोगों ने गुण-ग्राहकता दिखाते हुये, विधर्मियों को भी स्वबन्धु-बान्धवों की भांति आलिङ्गित किया हो !

हे नाथ ! मुझे इस बात के कहने का गर्व हो, कि मैं स्वर्ग को भी तृणवत् समझने वाले पर्ण-कुटीरवासी मंत्रद्रष्टा ऋषि की संतान हूँ, ब्रह्मात्मैक्य का अनुभव करने वाले गुरु का

शिष्य हूँ, तथा निःस्वार्थी सत्पुरुष का मित्र हूँ! जहाँ की जल वायु सेवन करने से, मेरा मानसिक स्वास्थ्य नित्य ही उन्नत हो, जहाँ धन-दारिद्र्य होने पर भी आत्म-स्वातंत्र्य का स्वराज्य नष्ट न हुआ हो, जहाँ भारतेश्वरी जगज्जननी की आमोद-प्रमोद-मयी गोद के पालने में झूलता रहूँ और जहाँ विषयाग्नि-वर्द्धक विविध व्यंजन त्याग कर फलाहार में ही मुझे पूर्ण सन्तोष हो, वहाँ ही मुझे "स्वदेश" कहने का सौभाग्य प्राप्त हो!

हे करुणानिधे, यदि मुझे भव-सागर में भेजना ही है, तो उस परम-पवित्र देश में जन्म दीजिये, जहाँ की माटी भी खाकर आपने त्रिलोक दिखा दिया था!

लोक-सुधार में आत्म-सुधार।

हे परम पुरुषोत्तम! जब मैं तेरी कर-निर्मित फूल-माला की कलियाँ अपनी अन्तरङ्गिणी मंजुल एवं सुकुमार वायु की सरस श्वास द्वारा स्पर्श करता हूं, और उनके ऊपर के कठोर-कण धीरे से झाड़ देता हूँ, तब मेरी मलिन आत्मा क्या ही आनन्द में निमग्न हो जाता है, कि जिसे योगियों ने समाधि-गत आनन्द कहा है!

हे जगत्पिता! जब मैं तेरी आज्ञानुसार, तेरे आदेशानुकूल, अपने छोटे बड़े बन्धु-बान्धवों के साथ सहृदयता और सहानु भूति करता हूं और पारस्परिक-प्रेम प्राप्त करने के अर्थ

अपना बड़े से बड़ा स्वार्थ भी त्याग देता हूं, तब मुझे अना-यास ही 'मुक्ति' का द्वार खुल जाता है, और वहां तेरी आज्ञा-पालन का महत्व भली प्रकार विदित हो जाता है।

हे सर्व भूतात्मन्! जब मैं चराचर जगत में अपनी ही आत्मा ओत प्रोत देख कर और सर्व प्राणियों को अपनी आत्मा में स्थित जान कर कोई भी कर्म करता हूं, तब वह कर्म मेरी आत्मा को अखण्ड-सुख देने को उद्यत हो जाता है, और इस 'वसुधैव कुटुम्बकम्' वाले सिद्धान्त में ही मुझे अपनी आत्मा का उच्चातिउच्च आदर्श प्रकट होता है।

हे सर्व लोकेश्वर! जब मैं अपने विशुद्ध आदर्श को तेरे अनन्य प्रेम में देखता हूं और उसी दृष्टि से इस समग्र जगत को अवलोकित करता हूं, (क्योंकि तू विश्व-विहारी और विश्व-रूप है), तब मेरा आत्मानन्द असीम और अकथनीय हो जाता है, क्योंकि इस सम-दृष्टि से व्यष्टि और समष्टि का दुख-मय-भेद हट कर दूर हो जाता है।

हे सर्वज्ञ! मुझे तब ही परम सन्तोष हो, जब कि मैं सर्व-प्राणियों के नेत्रों से तेरी अलौकिक छवि देखूं, सर्व-भूतों के हाथों से तेरा चरण-स्पर्श करूं, और समस्त मस्तकों से तुझे पूर्ण प्रणाम करूं।

मुक्त-कीर।

कीर, आज तू रसाल की डाल पर बैठ कर कौन सा मनोहर गीत गा रहा है? तेरा मन प्रसन्न और पंख प्रफुल्लित हैं। तेरी ध्वनि में स्वतन्त्रता का स्वर सुनाई देता है और तदङ्गभूत आनन्द की तरल तरङ्ग तेरे मान-सरोवर में उठ रही है।

ज्ञात होता है, कि आज तू दस्युता के दुखद बन्धन से मुक्त हुआ है। उस बद्ध-दशा में तू बलहीन, मनमलीन और दीन हो गया था। अन्तरात्मा की अनुमति के बिना ही पराधीनता के वश हो, बार २ बोलने से तेरा मधुर स्वर "टें टें" में परिणत हो गया था। तेरे मान-प्रिय स्वामी को रात दिन चापलूसी कराते हुये लज्जा भी नहीं आती थी। रत्न-जटित स्वर्ण पिंजड़ा तेरी दृष्टि में तृण-निर्मित-नीड़ की अपेक्षा अधिक कष्टदायक होगा। दूध और रोटी आदि अप्राकृतिक भोजन वन के खट-मिट्ठे फलों के सामने अस्वादिष्ट एवं अरुचिकारी लगते होंगे। धर्म के अर्थ कुल विद्या और यश बेंच कर दास बन जाने वाले क्षुद्र मनुष्यों की भांति जन्म से ही पिंजड़ों में बन्द नगर के सुशिक्षित सुये, निःस्वार्थी बनैले सुओं के आगे नीच और हेय जंचते होंगे।

तू आत्म-बल से रहित नहीं हुआ और विपत्ति के समय भी पुरुषार्थ, धैर्य और भावी आशा आदि सद्गुणों का निरादर नहीं किया। यही कारण है, कि तेरा आन्दोलन सफल हुआ और आज के दिन दासत्व की निकृष्ट बेड़ियां

काट कर प्रकृति के विशाल साम्राज्य में पूर्ण स्वत्व लाभ करता हुआ स्वतन्त्रता के स्वाभाविक गीत गा रहा है।

इस मुक्ति में तेरे साम्य विचारों का विकाश पूर्णता को प्राप्त हो जायेगा और तेरी स्वतन्त्रता तेरे ही पंखों की नियमित मर्यादा से अव्याहत तथा सुरक्षित रहेगी।

आज, तू कृतार्थ हो गया और विष्णु-वाहक गरुड़ के होते हुये भी 'पक्षिराज' कहलाने का सौभाग्य तुझे ही प्राप्त हो सकता है।

क्या मुझे इसी लिये धिक्कारते हो ?
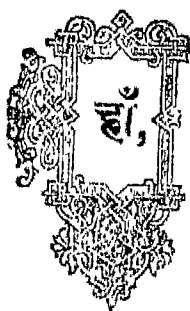
मैं तुम्हारे बुलाने पर तुम्हारे साथ हाँ में हाँ नहीं मिलाता ! निःसंदेह, मैं स्वाधीनता चाहता हूँ, किन्तु उद्दण्डता और निरंकुशता नहीं। मेरा आदर्श निःसङ्ग अवश्य है, पर समाज का विरोधक एवं बाधक नहीं। मेरा उद्देश सुधार का नहीं है, किन्तु शान्ति मूलक साफल्य ही मेरा परम ध्येय है। मैं आन्दोलन का पक्षपाती नहीं, तथापि निष्काम तथा तत्वपूर्ण साम्य-कर्मण्यता का पूर्ण उपासक हूँ। क्या इन्हीं बातों से मैं तुम्हारी दृष्टि में हेय हूँ ?

मैं विद्या, मान और यश को क्षणिक सुखों के अर्थ, द्वार २ कौड़ियों में नहीं बेचना चाहता हूँ। मैं काम-काञ्चन के सेवकों तथा उच्च पदाधिकारियों का दास न बनूंगा। मेरे मत में प्राचीन मंत्र-द्रष्टा महर्षियों की द्वेषपूर्ण आलोचना

उचित नहीं, कारण कि ऐसी आलोचना में आलोचक अभ्यास और निदिध्यास से नितान्त रहित देखा गया है। यद्यपि सामाजिक-संचालन में मानसिक युक्ति बहुत अंश तक आदरणीय है, तथापि अनुभवात्मक आत्म-रहस्यों को अतर्क्य मानना ही मेरा अभीष्ट है। गुण कर्म-विभाग के अनुसार वर्णव्यवस्था मानते हुये निस्वार्थ दृष्टि से पद-दलित शूद्र जातियों की उन्नति करना मेरा प्रधान कर्तव्य है। क्या इन्हीं कारणों से मैं तुम्हारी समाज से पतित हो गया?

समाचार-पत्रों के भिन्न २ विषय पढ़ कर, मैं अपनी मानसिक शान्ति में बाधा नहीं डालता, क्योंकि उनमें कोई नवीनता या उपयोगिता नहीं पाई जाती। पुस्तकों का कोरा रटना निस्सार समझकर प्रत्येक निर्दिष्ट विषय का साक्षात्कार करना व्यक्ति-विशेष का उत्कृष्ट कर्तव्य है। स्वावलम्बन तथा आत्मोत्कर्ष की शिक्षा अनिवार्य रूप से हो जानी बहुत ही श्रेयस्कर है। विषयोपसेवन की वासनात्मक बुद्धि से संसार को सुखमय तथा प्रवृत्ति प्रधान मानना अथवा आलस्य और अकर्मण्यता के वश संन्यास-मूलक निवृत्ति प्रधान मानना, ये दोनों ही सिद्धान्त जीव के बाधक हैं। क्या इन्हीं बातों के मानने से मैं धिक्कारणीय हो गया?

सत्य का अनादर होने से, मैं तुम से बोलना नहीं चाहता। वृथा प्रशंसा सुनते २ कान मूँद लिये और दूसरों पर जलने वाले स्वार्थियों का कलंकित मुख देख पड़ने से, मैं प्रेम-योगालय में आँखें मीच कर अकेला ही बैठा रहता हूँ। क्या तुम मुझे इसी से धिक्कारते हो, कि मैं एकान्त में बैठकर प्रेम-पूजन किया करता हूँ?

❧ ❧ ❧

मुरझाया हुआ फूल।

अय व्याकुल फूल, तू आज धरती पर ऐसा दुखी क्यों पड़ा है ? क्या तेरे साथियों ने तेरा तिरस्कार किया है, अथवा उनकी संगति में बहुत दिनों रह कर तेरा ही जी ऊब गया ? निःसन्देह यही ज्ञात होता है कि तेरे दुर्विनीत सहवासियों ने ही यह दुर्दशा की है। निरंकुश राज्य से जैसे नीति वहिष्कृत हो जाती है, वृथा पक्षपात में जैसे सत्य चला जाता है, कुसंगति में जैसे वृद्ध-जनों के आदर, लक्ष्मी और यश से विमुख होना पड़ता है, वैसे ही प्रायः कामीजन स्वार्थ-साधन के समय अपने अभिन्न हृदय प्रिय-मित्र का भी परित्याग कर बैठते हैं।

हे म्लान-वदन, क्या तुझे यह दुख है कि, 'मैं अकेला हूं ?' इसका क्या सोच करना है ? देख, तेरा शैशव और यौवन अनेक आमोद-प्रमोद में व्यतीत हुये। सुगन्धि-वाहिनी-समीर ने तेरा अधर-रस पान कर दिगन्तों में यश-सौरभ फैला दिया। मरन्द-लोलुप-मलिन्द तुझ उदार चरित्र प्रणय के तो सदा दास ही बने रहे। तेरा सच्चा मान प्रकृति ने ही कर के जाना। तू अब भी ज्यों का त्यों निर्मल है, क्योंकि स्वार्थ-पर-मानवजाति के घृणित हाथ ने तेरे शरीर को छू कर कलुषित नहीं कर पाया। सब के साथ रह कर तुझे अपने गुण-अवगुण का सत्य निश्चय नहीं होता था। आज तू अकेला और आपत्ति-ग्रस्त है। अतः शोक त्याग कर स्वावलम्बन द्वारा स्वयं ही अपना निर्णायक बन जा।

हे कुलकेतो, तेरा जन्म-दाता वृक्ष तेरे बिना श्री-हीन हो गया है और साथी भी स्वयं प्रभा-रहित होने से अपने कृत्य

पर पश्चात्ताप कर रहे हैं। अब कोई सज्जन उनको धारण न करेगा। उनके गर्वोन्नत मस्तक नत हो जावेंगे। और अनीति-प्रवाह-पतित समाज की नाईं तेरे सहगामियों का कहीं विश्वास न होगा।

हे कुसुम, धन्य तुझे, जो सब ऐश्वर्य भोग कर आज जगन्माता धरणी का अङ्क-शायी बना हुआ है! देख, तेरे व्यथित अंगों पर पवन पंखा झल रहा है और कवि आंसू बहा २ कर तेरा शिथिल गात्र धो रहा है। अधिक क्या, तेरा सौभाग्य असीम है! भगवान् प्रेम-देव के चरणों की पवित्र रज का परिसेवन तू ही कर सकता है और मोक्ष का अधिकारी भी तू ही है!

नींद के झोंके।
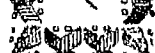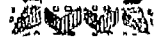
र्योदय हो आया। पक्षि-समूह रजनी-आश्रयों से उड़ २ कर रक्त-वर्ण आकाश को, कर्त्तव्य-परायणता की शिक्षण-शाला बनाने लगे। काम काज करने वाले अपने २ कार्य्यालयों में प्रस्तुत हो गये। वाचनालय में अप्राकृतिक एवं 'पराव-लम्बन-मूलक' पाठ का कर्कश-रव पूरित हो गया। किन्तु, उस आलसी मनुष्य को, जिसकी जीवनी स्वार्थ-परता की काली चादर से आच्छादित हो कर निराशा के अंधेरे कोने में पड़ी हुई 'किं कर्त्तव्य विमूढ़' हो रही है, अब भी नींद के झोंके आ रहे हैं।

दोपहर की कड़ी धूप से झुलसते हुये किसान, आत्म-निर्भरता रखते हुये भी सार्थकता के अभाव से, खेतों में हल जोत रहे हैं। ज्ञान की इयत्ता पर गर्व करने वाले दार्शनिक पण्डित उपवन के लता-मण्डप में समाचार-पत्रों पर विचार कर रहे हैं। नैतिक-सुधारों की ज्योति अनेकता-जनित-वायु के प्रबल झोकों से निर्वाण-प्राय होने पर भी सफलता के राज्य में ज्वलन्त-प्रभा दिखा रही है। किन्तु वह मनुष्य, जो तृष्णा-तरङ्गिणी के तीर पर खड़ा हुआ नेत्रोन्मीलिनी एवं मदोन्मत्त-कारिणी समीर के स्पर्श से अपनी शक्तियों का दुरुपयोग कर रहा है, इस प्रखर पुरुषार्थ के घंटों में भी नींद के झोके ले रहा है।

सन्ध्या होने पर केवट लोग अपनी २ नौकायें किनारे पर बांधने लगे। उनके परिश्रम-साफल्य का प्रकाश लहरों में प्रतिबिम्बित हो कर आशा-शून्य नवयुवकों के हृदय को प्रकाशित एवं प्रोत्साहित कर रहा है। वन से लौटा हुआ ग्वाल गायें हाँकता चला आता है और उसके कण्ठ से स्वतंत्रता के गीत प्रवाहित होकर मानव-हृदय को चिर-बाधित कर रहे हैं। किन्तु वह मनुष्य, जो जन-शून्य राज-पथ पर खड़ा हुआ दूरवर्ती-प्रासादों की छटा पर मोहित हो कर मनो-राज्य के क्षणिक स्वप्न देख रहा है, अब भी नींद के झोके लेता हुआ अपने जीवन को अधम तर बना रहा है!

* * *

धिक्कार !

रे धूर्त मन, तेरे जीवन पर धिक्कार, जो अपनी अमूल्य चिन्तामणि आत्मा को बार २ काँच के टुकड़ों पर बेचता फिरा !

जगत के झूंठे राजाओं के दरवाज़े पर बैठ कर निराशा का यही उत्तर पाया, कि 'जाओ, फिर आना, अभी महाराज सोते हैं।'

उच्च पदाधिकारियों को झुक २ कर वन्दना करते २ कमर के हड्डे टूट गये, पर वे मदान्ध लोग तेरी ओर कभी हँस कर भी न हेरे।

तूने काम-काञ्चन के दासों की, 'दीन-बन्धु' कह कर जन्म भर स्तुति की, किन्तु सच्चे दीनबन्धु पतित-पावन परमेश्वर को प्रेम से एक बार भी 'दीन-बन्धु !' कह कर न पुकारा।

रे स्वार्थ पर, तूने सभा में आ कर भी सत्य का अनादर कर के सदा मुंह देखी ही कही ! अपनी प्रशंसा कराने के लिये दूसरों की कीर्ति पर धब्बा लगाया और सदाचार से तो सदा को हाथ धो बैठा। आत्मबल खो देने के कारण खुले शब्दों में बात न कह कर कान में मुंह लगाता फिरा। सामने बड़ाई करना और पीठ फेरने पर निन्दा करना, तेरा कुल-धर्म हो गया। पर-द्रोह करने के लिये कमर कस ली और लोभ के वश बड़े २ अन्याय-पूर्ण अनर्थ करने में तेरा जी ज़रा भी न हिचका !

रे अधम, तू समाज के प्राकृतिक बन्धनों से उच्छृङ्खल हो कर स्वधर्म-भ्रष्ट हो गया और मन-मुखी अनभ्यस्त नियमों की संस्थायें रच कर उभय-लोक नष्ट करने वाले वागाडम्बर

फैलाने लगा । तूने स्वावलम्बन खो दिया । ऐक्य का तिरस्कार किया । विरोध-मूलक स्वार्थ को अपनाया, और संसार में असामञ्जस्य एवं अनित्यता का स्तम्भ आरोपित कर दिया ।

अरे नीच मन, तेरे कृत्य भयंकर हैं और उन पर दण्ड भी महा कठोर है । अब भी, अपनी कालिमा धोने का प्रयत्न कर, नहीं तो जा, चुल्लू भर पानी में डूब मर !

❧ ❧ ❧

स्वदेश-संदेश ।

ऐ भारत-वासियो ! भारतीय आबाल-वृद्धो ! उठो, जागो और कर्म-भूमि में स्व-कर्तव्य कर दिखाओ ।

यह निद्रा ही थी, मृत्यु नहीं थी । खूब सो लिया, अब सारा श्रम दूर हो गया होगा, और तुम्हारी नसों में फिर ज्यों का त्यों भारतीय-रुधिर का स्वतन्त्रता-प्रिय प्रवाह दौड़ने लगा होगा ।

जीवन-संग्राम के पथ पर ऐसी सहिष्णुता और सहृदयता दिखाते हुये चलो, कि तुम्हारे प्रत्येक कदम शान्ति-प्रदर्शित करने में समर्थ हों, और जिनके कोमल आघात से मार्ग की धूल भी स्वतन्त्रता के सुख से वंचित न होने पावे ।

तुम्हारा सच्चा धर्म शान्ति-मूलक है, विरोधात्मक नहीं । समग्र जगत को आत्म-दृष्टि से देखते हुये, पारस्परिक-सहानुभूति द्वारा भेद्-भाव दूर करते हुये और निष्काम कर्म-योग से लोक-सुधार करते हुये अपने को उन प्राचीन आर्यों

का वंशज सिद्ध कर दिखाओ, जिन महानुभावों ने समस्त संसार को अपने ऐहिक तथा पारलौकिक ऐश्वर्य के आगे नत-जानु कर रक्खा था।

ऐ भारतीय-युवको! आज तुम्हारे वीर्य और साहस का समय आ गया। स्वदेश की वेदिका में अपने स्वार्थ का हवन कर के स्वयं-त्यागी बन जाओ, और मायिक जगत को अपने प्रचण्ड आत्म-बल द्वारा परास्त करने को कटिबद्ध हो जाओ। करोड़ों नेत्र, आज के दिन, तुम्हारी आत्म-वीरता देखने को स्तब्ध हो रहे हैं। यदि तुम्हारे अवयव, भारत-माता के स्तन्य-दान से परिपुष्ट हुये हों, यदि क्षणस्थायी चमक दमक की सभ्यता से तुम्हारे नयन-मुकुर मलिन न हुये हों, यदि तुम्हारे हृदय में 'स्वदेश-भक्ति' के स्रोत पराधीनता के कारण न छिड़ गये हों, तो आओ, अपने वृद्ध-भारत का उद्धार करो, और संसार की अन्यान्य समुन्नत जातियों में अपनी 'सत्ता' के लिये भी स्थान लेने को समर्थ होओ।

मानस-मलिन ।

बढ़्यो हृदय आनन्द उछाहू ।
उमंगेउ प्रेम-प्रमोद-प्रवाहू ॥
चली सुभग कविता सरिता सौं ।
राम विमल जस जल भरि तासौं ॥
\+ \+ \+ \+ \+ \+
त्रिविध ताप त्रासक तिमुहानी ।
राम स्वरूप सिन्धु समुहानी ॥
मानस मूल मिली सुरसरि ही ।
सुनत सुजन मन पावन करही ॥

—राम चरित-मानस ।

"The on rolling flood of the love eternal
Hath at last found its perfect final course
All the Joys and sorrows and longings of the heart
All the memories of the moments of ecstasy,
All the love-lyrics of the poets of all climes and
times.
Have come from the everywhere
And gathered in one single love at Thy feet."

—*Rabindranath Tagore*

जीर्णजल-पोत।

मल्लाह, मेरी नाव को खेकर उस पार कर दे! मेरी जीर्ण-नौका को किसी प्रकार 'लक्ष्य स्थल' पर पहुंचा दे!

आज सवेरे ही से इस सु-विशाल सागर में तूफान की प्रबलता रही। दिन भर किनारे की रेत उड़ने से दिवा लोक धूल-धूसरित एवं अस्पष्ट रहा। धीवर लोगों की ऐसे कुसमय में खूब बन पड़ी। व्याकुल पक्षियों के चीत्कार तथा मत्स्यों के क्रन्दन-रव से वयं दयादेवी के करुणा पूर्ण नेत्रों से अश्रु-धारा बहने लगी। अहो! इस अकस्मात् आन्दोलन की घोर प्रबलता का कहना ही क्या?

हाय! मैं कब का इस संकल्प-कल्पित नौका पर खड़ा हुआ तुझे पुकार रहा हूं? इस सुदूर तीर पर बस रहने से, यद्यपि यह भयावनी रात्रि मुझे किसी प्रकार आशातीत नहीं कर सकती है, तथापि 'उस-पार' जाने की उत्कण्ठा ने मुझे ऐसा उद्विग्न कर रक्खा है, कि मेरे ये सारे हृष्ट पुष्ट अवयव मेरी आज्ञोल्लंघन करने में किंचित् भय नहीं खाते! मैंने इस किनारे को अपना निवास स्थान, स्वीय विनोदालय मान लिया है। यद्यपि यहां खड़े होने में सहस्रों वेदनाओं की अनुभूति करनी पड़ी, तथापि ये निर्लज्ज पैर ऐसे स्थिर हो गये हैं, कि मुझे इनको "अपना" कहते हुये लज्जित होना पड़ता है। तो क्या, 'उस-पार' भी ऐसी ही असंतुष्टि और निरानन्द का साक्षात् न करना होगा?

कुछ भी हो, मेरा अधीर मन 'उस पार' जानेको ही उतावली कर रहा है। वह तट अज्ञात है, किन्तु इस पार के संवेदन नित्य-सुख देने में असमर्थ होने के कारण 'भार' से प्रतीत हो रहे हैं। जब तक यह तीर तेरी कृपा का आगार न हो जायगा, तब तक मुझे 'उस-पार' का अखण्ड आनन्द प्राप्त न हो सकेगा। जब तक मेरी वासनायें तेरे सुमृदु स्पर्श से पवित्र न हो जायँगी, तब तक मुझे इस तीर पर खड़े २ 'उस-पार' के आनन्द को लालायित होना पड़ेगा!

प्यारे मल्लाह! अब यहां खड़े होते भय लगता है और एक एक क्षण कल्प सा बीत रहा है। चाहे तू मेरी नौका को ठिकाने लगा वा न लगा, चाहे मुझे 'उस पार' भेज वा न भेज, किन्तु हे मेरे सर्वस्व! एक बार यहां आकर मुझे अपने पुनीत दर्शन दे दे और अपने कर कमल से मेरा हाथ पकड़ ले!

अन्तिम-प्रणाम ।

हे अद्भुत संसार! आज मैं तुझे अन्तिम प्रणाम करता हूं। मैं नहीं जानता कि तेरे सहवास में मुझे कितने दुःख और सुख प्राप्त हुये और किन किन कारणोंसे तुझे भला बुरा नहीं कहा! किन्तु तू सत्व-शून्य नहीं, कारण कि तेरी ही संगतिमें, सुसंगति में, मुझे आत्म-साक्षात्कार करने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई, और तेरे सुदृढ़ बन्धन द्वारा मुक्ति-कपाट खोले गये।

हे पंचतत्वात्मक प्रकृति, आज तुझे मेरी अन्तिम प्रणाम है। जब २ मेरे अङ्ग शिथिल पड़ गये और सभ्यता के प्रचण्ड

प्रकाश से आंखों में चकाचौंध लग गई, तब तूने मातृवत् मुझ अधीर बालक को अपनी निर्भीत गोद में सुला लिया। अनन्तता-विशिष्ट जीवन-रहस्य के स्वप्न तेरी अङ्क में ही देखे, और यही कारण है कि तेरी अनिर्वचनीय-प्रदर्शिनी में मुझे अनायास ही आत्म-रत्न मिल गया।

हे सम्बन्धियो, बन्धु बान्धवो, हितैषियो तथा प्रियमित्रो! आओ और मेरे अकिञ्चिन हृदय को भेंट लो। तुम्हारे सम्पर्क में मैंने क्या २ अनुभव नहीं पाये और क्या २ मनो विनोद नहीं किये! तुम लोगों ने मुझे अपने सम्बन्ध के अधिकार में रखना चाहा, पर मेरा क्या वश, आत्म-प्रेम ने अथवा विश्वैक प्रेम ने तुम्हारे स्वार्थ-पूर्ण-परिमित स्थान से विमुक्त करके मुझे स्वतंत्र कर दिया।

देखो, मेरा प्रियतम हाथ पकड़ कर प्रसन्न मुझे अपनी ओर खींच रहा है। मेरे और उसके नेत्र मिल रहे हैं। उसके सौन्दर्य-जनित सुधा-बिन्दु टपक रहे हैं और मैं लोलुपभ्रमर इस अलौकिक मधु का पान कर रहा हूं।

आओ, हाथ मिलाकर मेरी प्रणाम स्वीकार कर लो, क्योंकि मेरी और तुम्हारी यही अंतिम भेंट है!

पुष्पाञ्जलि ।

मेरे स्वामी ! अनादि काल से अनन्त जीव तेरी असीम और अप्रतिम अर्चना में असंख्य उपचार करते चले आये हैं, तेरे अभिमुख कज्जल कर्पूर में, वज्र नवनीत में, अग्नि हिम-राशि में तथा मृत्यु अमरत्व में परिणत हो गई, और तेरे चरणों के परिसेवन से भक्तों के प्रेम-पूर्ण भाव तेरी मंद मुसक्यानमें समुचित स्थान पाकर कृत कृत्य होगये, किन्तु मैं, एक तेरा तुच्छाति तुच्छ सेवक, अपनी टोकनी में कुछ फूल लिये खड़ा ही रहा !

हे नाथ ! मैंने ये फूल, दिन रात के कठिन परिश्रम से जीवनोद्यान में चुने हैं। यद्यपि वियोगाश्रु-जल निरन्तर छिड़कते रहने से वे कुम्हलाये नहीं हैं, तथापि, उनका पराग वासना-भ्रमर पान करने को चारों ओर से मंड़रा रहे हैं।

आज, मेरा हृदय तेरे अभिलषित दर्शनों को अधीर हो रहा है और यह तुच्छ भेंट, अब मैं अपने पास नहीं रख सकता हूं। मनोराज्य के स्वप्न संसार में मेरे दोनों नेत्र तेरे अलौकिक सौन्दर्य-स्रोत का रसास्वादन करने को लालायित हो रहे हैं, और मेरा स्वर-हीन कण्ठ तेरी असीम कृपा के गीत गाने को उत्कण्ठित हो रहा है।

हे मेरे प्रियतम ! आओ, आओ, इस मेरी पर्ण-कुटीर में पदार्पण करो। मैंने अपनी भावुकता और सरसता का जल चक्षु-पात्र में भर लिया है, उसी से मैं तुम्हारे चरण धो दूंगा, और इस

टोकनी के मुट्ठी भर फूल उन पद-पद्मों पर स्नेह-पूर्वक नतजानु एवं अवनत-शिर होकर चढ़ा दूंगा।

हे देवाधिदेव! इस प्रेमोन्मत्त 'हरि' की पुष्पाञ्जलि स्वीकार कर ले, जिससे कि उसका परिश्रम सफल हो, और तेरे चरणों में रति और प्रेम उत्तरोत्तर बढ़े!
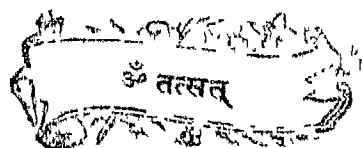
साहित्योदय की विकास-विज्ञप्ति।

प्रत्येक जाति का सच्चा जीवन उसका साहित्य ही है। हृदय-गत भावों को वास्तव में प्रकाशित करने वाली अपनी मातृ-भाषा ही कही जा सकती है। मातृ-भाषा में सर्वोच्च-भावों को स्थान देना ही सच्चे साहित्य का उद्देश्य है। ऐसे साहित्य से ही देश के कल्याण की आशा की जा सकती है। इसी लक्ष्य की ओर ध्यान देकर हमने केवल साहित्य-सेवा के विचार से 'साहित्योदय-ग्रन्थ-माला' प्रकाशित करना प्रारम्भ किया है, जिसका पहला पुष्प आप महानुभावों के कर-कमलों में है। इसे पढ़ कर यदि आप लोग साहित्य-दर्शन के साथ ही साथ आध्यात्म्य-जगत में कुछ भी शान्ति-लाभ करेंगे, तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे। हम उत्साह पूर्वक इसके बाद दो और ग्रन्थ-रत्न प्रकाशित करेंगे, जिनके नाम 'शान्ति-सोपान' और 'धर्मराज' हैं।

शान्ति-सोपान—लेखक पं० हरिप्रसाद द्विवेदी। इसमें विचार, भौतिक और आध्यात्मिक वाद, विश्वैक धर्म, साधना, कर्मयोग, भक्ति और शान्ति पर बड़े ही उत्तम निबन्ध लिखे गये हैं। तत्व-विवेचन, अनुभवात्मक आनन्द तथा सच्चा जीवन इसमें बड़ी ही ख़ूबी से अङ्कित किया गया है। इतने गूढ़ विषयों को भी 'हरी जी' ने बड़ी ही मनोरञ्जन और सुलभ-शैली द्वारा प्रकट किया है। इसमें पौर्वात्य एवं पाश्चात्य तत्व-ज्ञानियों की भी आलोचना की गई है। सारांश, यह पुस्तक 'विचार-दर्शन' और 'गीता रहस्य' की श्रेणी में रक्खी जा सकती है। लगभग ३०० पृष्ठ वाली सजिल्द पुस्तक

का दाम २) तथा बिना जिल्द का १।।।) होगा। अथा शीघ्र ग्राहक-श्रेणी में नाम लिखा लीजिये। पुस्तक भी आप लोगों के उत्साह से बहुत ही जल्दी प्रकाशित होगी।

धर्मराज—लेखक श्रीयुत प्रो० शिवाधार पांडेय एम० ए०। यह एक बड़ा ही उत्तम नाटक है। कहना ही पड़ता है कि आधुनिक नाटकों में भाव, भाषा तथा शैली के रूप में यह निराला और सर्वोत्तम नाटक होगा। मूल्य प्रकाशित होने पर मालूम होगा।

हमारे यहाँ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की सम्पूर्ण परी-क्षाओं की पाठ्य पुस्तकें उचित मूल्य पर मिलती हैं। हरिदास ऐंड को०, हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर तथा अन्यान्य प्रसिद्ध ग्रन्थ-मालाओं की उत्तमोत्तम पुस्तकें हमारे कार्यालय से मिल सकती हैं।

पता—

मैनेजर, साहित्योदय,

प्रयाग।